दोहावली



प्रणेता—

गोस्वामी श्रीमद्राम सखेन्द्र जी महाराज

निद्धयाचार्य

❀ मंगल मूर्ति हनुमते नमः ❀

श्रीमद्राम सखेन्द्र निद्धयाचार्य जी महाराज

प्रणीता

सटिप्पण— भावार्थ दीपिका टीकोपेता

❀ दोहावली ❀

टीकाकार एवञ्च प्रकाशक :—

महान्त प्रमोदवन विहारी शरण शास्त्री

बड़ा स्थान मैहर (मध्य प्रदेश)

प्रथम संस्करण १०००

सम्प्रदाय प्रवर्तकाचार्य

* श्रीमद्राम सखेन्द्र जू महाराज *

वैष्णव समाज चार सम्प्रदायों में विभक्त है जिनकी ख्याति श्री-रुद्र-ब्रह्म और सनकादि इन नामों से है। श्रीसम्प्रदाय का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत, रुद्र सम्प्रदाय का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत, ब्रह्म सम्प्रदाय का सिद्धान्त द्वैत और सनकादि सम्प्रदाय का सिद्धान्त द्वैताद्वैत है। यद्यपि चारो सम्प्रदायों के सिद्धान्त भिन्न-भिन्न हैं किन्तु श्रीभगवत प्राप्ति के साधन सभी सम्प्रदायों के एक ही हैं और वह है श्रीभगवत भक्ति। श्री सम्प्रदाय श्रीमन्नारायण और श्रीमद्राम उपासक है और शेष तीन सम्प्रदाय श्री कृष्णोपासक हैं।

श्रुति कहती है रसो वै सः अर्थात परमात्मा रसस्वरूप है। इसको प्राप्त करके ही यह जीव आनन्दी होता है। श्री वैष्णव समाज में शान्त-दास्य--सख्य--श्रृंगार और वात्सल्य ये पांच रस माने गये हैं और इन्हीं पांचो रसों के उपासकजन इस वैष्णव समाज में हैं। इन पाचों रसों में सख्य रस की प्रधानता मानी जाती है। द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्यनश्न नन्यो अभिचाकशीति॥ यह श्रुति वाक्यही सख्यरसकी प्रधानता में प्रमाण हैं। श्रुति डंके की चोट पर कह रही है कि इस शरीर रूप वृक्ष पर दो पंख वाले दो पक्षी सखा रूप में साथ

साथ रह रहे हैं इनमें एक जीवात्मा है और दूसरा परमात्मा है। इनमें एक जीवात्मा इस शरीर द्वारा किये गये कर्म फलों को भोगता है और दूसरा परमात्मा बिना कर्म फल भोगे मस्त रहता है।

श्री रामचरित मानस में श्री गोस्वामी जी ने कहा है

रामप्राण प्रिय जीवनजीके स्वारथ रहित सखा सबही के

अर्थात् श्री राजीव लोचन राम सबके प्राणप्रिय हैं, जीवन के जीवन हैं और निःस्वार्थ सबके सखा हैं। इत्यादि शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर ही सख्य रस को रसराज माना गया है और यह सम्बन्ध ठीक ही बैठता है तथा इसमें गिरनेका भयभी नहीं है। श्रीमद्राम सखेन्द्र जू महाराज ब्रह्म सम्प्रदाय के और द्वैतवादी महापुरुष थे। यद्यपि आपके अपने सम्प्रदाय सिद्धान्तानुसार आपकी उपासना श्रीकृष्ण जी की थी किन्तु चूंकि आप साकेत धाम निवासी श्री रामभद्र जू के नित्य सखा थे इस कारण इस शरीर से आपने श्री रामभद्र जू का सखा बनना ही स्वीकार किया। आप सख्यरस रसिकजनों में मूर्धन्य माने जाते हैं। आप सिद्ध पुरुष तो थे ही साथ ही साथ आप सम्प्रदाय प्रवर्तकाचार्य भी माने जाते हैं। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के विशिष्टतम महात्माजन आपके बनाये हुये पदों को बड़े अनुराग से गाया करते हैं और भाव में विभोर हो जाया करते हैं।

अयोध्या चित्रकूट मैहर आदि जगहों में आप निवास

किया करते थे। इस कारण इन स्थानों में आपके अनुयाइयोंके अनेक स्थान हैं। श्रीमद्राम सखेन्द्र जी महाराज के अनुगामियों का प्रधान गादी स्थान मैहर है। जहांके बड़ास्थान के वर्तमान महन्त षट् श्रीमहन्त प्रमोदवन विहारी शरण जी शास्त्री हैं। आप तात्विक विद्वान और आचार्यनिष्ठ विशिष्ट सन्त हैं।

श्री शास्त्री जी में अनेक विशेषतायें हैं। आप शान्त, दान्त, सुशील, दयावान, सन्तसेवापारायण, समाज सेवा-भावी और साहित्य के मर्मज्ञ हैं। आचार्य निष्ठा की तो आप साक्षात् प्रति मूर्ति ही हैं। जीवन को उत्तमोत्तम बनाने के लिये शास्त्रकारों ने दो ही साधन बतलाये हैं। महामानवों का संग तथा महामानवों द्वारा रचित सत्साहित्यों का संग। संग से ही मनुष्य बनता भी है और बिगड़ता भी है। सत्साहित्यों के संग से मनुष्य बनता है और असत् साहित्योंके संग से बिगड़ता है। अतीत कालीन महापुरुषों के साथ सत्संगति करने का एक-मात्र उपाय यही कि हम उन महापुरुषोंके द्वारा रचित ग्रन्थों का पठन श्रवण मनन करें।

श्रीमद्राम सखेन्द्र निम्बार्काचार्य प्रणीत। सटिप्पण भावार्थ दीपिका टीकोपेता इस दोहावली को प्रकाशित कर श्रीमहन्त जी महाराज ने श्रीवैष्णव जगत का अनन्त उपकार किया है। सारतत्वयुक्त यह पुस्तक पठनीय और मननीय है। सख्य रस

रसिक जनों के लिये तो यह पुस्तक अत्यन्त ही उपादेय है। आशा है रसिकजन इसका आदर करेंगे और इसे पढ़कर अपने जीवन को सफल बनायेंगे।

नोट—इस ग्रन्थ के ७७ वें नम्बर वाले दोहे के नीचे की टिप्पणी जो नहीं प्रकाशित की जा सकी है वह निम्नाँकित है।

इस दोहे से ग्रन्थकार ने केवल निरवयव वादी जो ईश्वर को रूपरेखा रहित बताते हैं कि ईश्वर निराकार हैं उनका कोई रूपरेखा नहीं है ऐसे निरवयव वाद सिद्धान्त का निराकरण किया गया है। इसका कारण यह है कि ईश्वर तत्त्व सर्व शक्ति सम्पन्न है अतएव वह ईश्वर तत्त्व निराकार और साकार दोनों है। दोहा संख्या ७७

विनीत—

ब्रह्मचारी वासुदेवाचार्य

प्रधान मन्त्री

अ० भा० विरक्त महामण्डल

श्री अयोध्या जी

* दो शब्द *

दुर्लभं भवमे वैतत् देवा नुग्रह .हेतुकम् ।

मनुष्यत्वं. मुमुक्षत्वं महापुरुष संश्रयः ॥

इस संसार में यह तीन वस्तुयें दुलभ हैं और यह भगवान की महती कृपा से ही प्राप्त होती हैं। मनुष्य जन्म मोक्ष की आकांक्षा तथा महापुरुषों का सत्संग।

यूं तो जब हम अद्वैत मत का आश्रय लेते हैं तो सभी कुछ ब्रह्ममय है और उसी पर ब्रह्म परमात्मा की सत्ता सर्वत्र है दीप्यमान हो रही है। परन्तु क्या यह सम्भव है कि माया जनित जीव इस गहन मार्ग का अनुभव सरलता से कर सकेगा और यदि नहीं कर सकेगा तो ऐसा वह कौन सा पथ है जिसके द्वारा वह सरलता से अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकता है और वह है द्वैत मार्ग अर्थात् भक्ति मार्ग तथा महापुरुषों का सत्संग उनकी दिव्य वाणी का अध्ययन तथा मनन।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे यह दूसरी बार प्रातः स्मरणीय श्रीमद्राम सखेन्द्र निम्बार्काचार्य जी महाराज की यह दूसरी कृति "दोहावली" देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इसके पहले—'श्री मन्नृत्य राघव मिलन" नाम की पुस्तक अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। आद्याचार्य श्री मद्राम सखेन्द्र जी ने अनेकानेक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें से तो कुछ लुप्त हो चुके हैं और कुछ पाण्डु लिपियां

येन केन प्रकारेण प्राप्त हो रही हैं। इस दिशा में जो कुछ भी प्रयास हो रहा है उसका श्रेय हमारे वर्तमान षट् श्री महन्त प्रमोदवन बिहारी शरण जी महाराज को है आपके ही अकथ परिश्रम तथा कृपा से हमें "श्री मन्नृत्य राघव मिलन" का साक्षात्कार हुआ और अब "दोहावली" का श्री महाराज जी का ध्यान निरंतर इस ओर रहता है कि उनके पूर्व आचार्यों ने जिन ग्रन्थों की रचना की है उन्हें सरल से सरल भाषा के माध्यम से लोकोपयोगी बनाया जावे। जब मैं इस भावना को महाराज के हृदय में पाता हूं तो मुझे यह प्रतीत होता है कि महाराज ऐसे महान् कार्यों से चिर सम्बन्धित हैं क्योंकि—

तच्चेतसा स्मरति नून मबोध पूर्वम्।
भावास्थिराणि जन्मान्तर सौहृदानि॥

इस काव्य का यथार्थ में विद्वान् ही पूर्णरूपेण रसास्वादन कर सकते हैं क्योंकि बहुत से दोहे अत्यन्त जटिल तथा सामान्य बुद्धि के परे हैं तथापि षट् श्रीमहाराजजी ने उनका सरलतम अर्थ करने की भरसक चेष्टा की है। ग्रन्थकार ने जो द्वैत अद्वैत का सामञ्जस्य निम्न दोहों में किया है वह अद्वितीय है।

निराकार हरि तनु समझि, जैसे पुर साकेत।
राम सखे माया रहित, राम धाम इक हेत॥
मुक्ति रूप सनकादि लखि, राम सखे साकार।

निराकार सठ कहत हठ, विन समझे श्रुतिसार ॥
ब्रह्म निरबयव विगत असु, ता विन वेद न लेख ।
राम सखे पुनि वेद विनु, ईश्वर पथ क्यों पेख ॥

इस दोहावली में श्रीमद्राम सखेन्द्र जी महाराज के अतिरिक्त उनके पौत्र श्री जानकी शरण जी महाराज के कुछ दोहे हैं और चित्र निधि महाराज का भी टीकाकार ने परिचय कराया है। इससे यह पूर्ण रूपेण सिद्ध होता है कि इस गद्दी के पूर्व आचार्य प्रकाण्ड पण्डित तथा परम वैष्णव भक्त होते आये हैं और जिनकी रचनायें प्रायः प्राप्त नहीं होरहीं हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे वर्तमान षट् श्री महान्त जी महाराज श्रीमद्राम सखेन्द्र जी तथा अन्य आचार्यों की महान् कृतियों के खोज की अनवरत चेष्टा करते रहेंगे इससे न केवल इस स्थान की अमूल्य निधि जो छिपी हुई प्रगट हो जायगी बल्कि भक्तजनों का विशेष कर यहां के शिष्य वर्ग का कल्याण होगा क्योंकि उनके लिये तो केवल यही मार्ग शेष रह जाता है कि वह अपने गुरुवाणी पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुये भगवत पद प्राप्त करें। भगवान् के श्रीवचन हैं कि—

"मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्त तमा मताः"

जो मेरे भक्तों के भक्त हैं वह मेरे सर्वोत्तम भक्त हैं। मुझे न केवल हर्ष है बल्कि गर्व है कि इस युग में जबकि मानव समाज

भौतिक वाद की ओर द्रुति गति से अग्रसर हो रहा है अब भी भी ऐसे महान् आत्मायें हैं जो कि अपना अमूल्य समय देकर मानव को नैतिक अध:पतन से खींचकर सन्मार्ग की ओर आकृष्ट करने में संलग्न हैं।

हरयो सत्य कलियुग प्रबल, ब्यापी जगत अनीति
राम सखे हरि गुनन में, रही न नेक प्रतीत ॥
कलि पण्डित योगी तपी, भये रूप तद् रूप।
राम सखे कोई भगि बचे, पगि हरि रूप अनूप ॥

और जब तक आज का मानव इस तथ्य को नहीं समझता तब तक उसका उद्धार होना नितान्त कठिन है इस लिये—

तव निज जन सार्द्धं, सङ्गमो मे मदीश।
भवतु विषय वन्धच्छेदने, तीक्ष्ण खड्गः
तव चरण सरोजे स्थान दा नैक हेतु र्जनुषि
जनुषि भक्ति देहि पादार विन्दे ॥

हे प्रभो! आपके आत्मीयजनों (भक्तों) के साथ मेरा सदा समागम होता रहे जो विषय रूपी वन्धन को काटने के लिये तीक्ष्ण तलवार का काम देता है तथा आपके चरणारविन्दों में स्थान दिलाने का एक मात्र हेतु है। आप जन्म जन्म में अपने चरणारविन्दों की भक्ति प्रदान करें।

चरण सेवक

दिनांक २६-६-६६ ★ पं० प्रहलाद दास गर्ग
सचिव
ट्रस्ट कमेटी बड़ा अखाड़ा मैहर

❋ सप्रिय श्रीमन्नृत्य राघवाय नमः ❋

भूमिका

यह दोहावली षट् श्री महन्तपद भूषित श्री १०८-गुरुदेव श्री रामरङ्गीले शरण जू देव के साकेत यात्रा होने के पूर्व ही भाद्र शुक्ला ५ सम्बत् २००५ में प्रथमवार १००० एक सहस्र प्रति छप चुकी थी । उस समय श्री महाराज जी की अवस्था ८० वर्ष की थी । इस अवस्था में प्रायः मनुष्य पुरुषार्थ हीन हो जाता है यही कारण है कि श्री महाराज जी इसकी त्रुटियों पर ध्यान नहीं देसके, केवल शिष्यों के आग्रहवश मुद्रण करवा दिये ।

छपने के समय मैं भी श्री ठाकुरजी के कार्य वश अन्यत्र रहा इसीलिए मेरे देखनेकाभी सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ फलतः इसकी त्रुटियां ज्यों की त्यों ही रह गईं ।

छप जाने पर त्रुटियों को देखकर मन में चोभ हुआ कि छपने के पहिले इसकी प्रति देखने को न मिली । अब पश्चाताप से क्या हो सकता था । श्री महाराज जी से इस विषय पर प्रार्थना की । सुनकर श्री महाराज जी ने कहा कि शिष्यों के आग्रह वश इस ग्रन्थ के छपवाने में शीघ्रता होगई, छपने के पहिले इस पर आपसे परामर्श नहीं करसके पुनः कभी देखा जायगा।

किन्तु काल बड़ा प्रबल है, वह किसकी गति को एक सी देख सकता है, यही कारण है कि श्रावण शुक्ला नागपञ्चमी

सम्बत २००८में श्री महाराजजी श्रीचित्रकूट श्रीजानकी मन्दिर श्री जानकीकुण्डमें साकेतवासी होगये। अब श्रीमहाराजजी का सब भार अपने ऊपर आ गया। इस अवसर पर इस ग्रन्थ के अवलोकन करने का अवकाश ही नहीं मिला।

इस वर्ष सम्बत् २०१० में श्रावण झूलोत्सव हो जाने पर भाद्र कृष्णा तृतीया गुरुवार से मैं ज्वरार्त हो गया। कुछ लङ्घनों के बाद पथ मिला। अब इस समय कुछ स्वस्थ्य होनेपर पढ़ने का मन में कुछ विचार हुआ। इस दोहावली को देखने लगा। इसके देखने पर ज्ञात हुआ कि इस ग्रन्थ का भावार्थ बहुत क्लिष्ट है। इसके छप जाने पर भी सर्व साधारण लोग, तात्पर्य को नहीं समझ सकेंगे। इस लिए इसके वितरण से जनता का कोई लाभ विशेष नहीं होगा, लोग कुछ अंश पढ़ कर धर देंगे।

कारण यह है कि जिस ग्रन्थ का तात्पर्य नहीं समझ में आता है उसमें किसी का प्रेम नहीं होता है। इस विचार पर पहुँच कर मैं इस ग्रन्थपर लिखना (दिनांक ४—६—५३ तद० भाद्रकृष्णा ११एकादशी सम्बत् २०१० से) आरम्भ कर दिया।

यह ग्रन्थ प्रथम ही क्लिष्ट है तदनन्तर बहुत क्लिष्ट नहीं है। व्याघ्र मुख गो मुख है किन्तु भावार्थ सर्वत्र गूढ़ही है।

इसी छपी हुई दोहावली में प्रेस की बहुत त्रुटियां हैं। इस कारण किसी २ दोहे का अर्थ ही नहीं समझ में आता है। ऐसी परिस्थिति में किसी दूसरी प्रति की सहायता लेना अनि-

कार्य हो जाता है। परन्तु भगवान अपना कार्य स्वयं करा लेते हैं, इस बिचार धारा में पड़कर मैं पं० श्री पुजारी नवलकिशोर शरण जी के पास एक प्रति पुरानी दोहावली सम्बत् २००१ को लिखी हुई मिल गई, उसे मैं भलीभाँति देख सका।

इस प्रति के अन्त में लेखक ने लिखा है कि "जो प्रति देखी सो लिखी मम दोषो न दीयेत्," इस लेख से यह समझा कि यद्यपि यह लेख आधुनिकही है तथापि लेखकने जिस प्रति से लिखा होगा वह प्रति अवश्यही प्राचीन रही होगी। अतः उसी प्रति की सहायता लेकर इस कार्य का सम्पादन किया।

इन दोहों में कहीं २ छन्द भङ्ग सम्बन्धी त्रुटियां पाई जाती हैं। जैसे कि दोहा के प्रमथ चरण में १३ अक्षर और द्वितीय चरण में ११ अक्षर होते हैं। किन्तु इस दोहावली में सामयिक बिपरिणाम से, अथवा लेखक की असावधानी से इसके चतुर्थांश भाग में छन्द सम्बन्धी दोष किसी २ चरण में १५ अक्षर और किसी २ चरण में १६ अक्षर तक हैं।

पद्य काव्य में छन्द सम्बन्धी त्रुटि महान् दोष माना जाता है। यद्यपि इन दोनों कापियों में छन्द सम्बन्धी दोष सामान्य रूप से बराबर ही हैं, तथाऽपि पं० श्री पुजारीजी की प्रति अर्थतः शुद्ध है। और यह छपी हुई प्रति प्रेस सम्बन्धी दोषों से बहुत ही दूषित है।

छापने वालों ने किसी पद के अक्षर किसी पद में मिला दिये हैं। जैसे कि छपी हुई दोहावली के ६१ वें दोहे में "ज्योंलो होलोहो ह्वै रह्यो" यहाँ पर प्रथम पद के अक्षर का सम्बन्ध

द्वितीय पद में हो गया है अतएव अर्थ समझने में कुछ रुकावट आ जाती है, किन्तु श्रीपुजारीजी की प्रति में यह दोष नहीं है। जैसे कि इसी दोहे में—ज्यों लोहो लोहो रह्यो ऐसा पाठ है इसलिए पदार्थ के समझने में कोई रुकावट नहीं होती है। अस्तु इस सटीक दोहावली में यथासाध्य इन दोषों के निकालने का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थ में ११२ एक सौ बारह दोहा तथा दो सोरठा हैं। इस प्रकार कुल संख्या ११४ की है। तिसमें ९४ चौरानबे दोहा श्री मद्रामसखेन्द्र निध्याचार्य जी के रचे हुए हैं तथा १८ अठारह दोहा और दो सोरठा श्री स्वामी जानकी शरण जी महाराज के बनाये हुए प्रतीत होते हैं।

इन दोहों में श्री जानकीशरण जी महाराज अपने पूर्वाचार्यों की प्रशंसा की है तथा इष्ट देवताओं की स्तुति की है। तथा नीचे के तीन दोहों में तिलक की प्रशंसा तथा तिलक की सौन्दर्यतापर बहुत थोड़े शब्दों में अच्छा वर्णन किया है। जहाँ तक हो सका है इस ग्रन्थ के सुधारने का मनवाणी से प्रयत्न किया गया है।

मनुष्य धर्म के कारण असावधानी होना स्वाभाविक है इसलिए असावधानो द्वारा जो त्रुटियाँ हों उन्हे भावुक सज्जन सुधार लें। चिन्तनीय यह बात अवश्य है कि श्री १०८ श्री साकेतबासी महाराज जी इस ग्रन्थ को न देख सके। संसार में किसका सर्व मनोरथ सफल होता है। अस्तु

माघ कृष्ण १० भौमवार सम्वत् २०११

विनीतः—

पट् श्री महन्त प्रमोदवनविहारी शरण शास्त्री

बड़ा स्थान मैहर जिला सतना, मध्यप्रदेश



ग्रन्थकार

श्री १००८ श्रीमद्राम सखेन्द्र निद्धयाचार्यजी महाराज

आविर्भाव काल चैत्र शुक्ल ९ सं० १७५६

परमपदकाल आश्विन शुक्ल ७ सं० १८४२

❀ सप्रिय श्रीमन्नृत्य राघवाय नमः ❀

॥ अथ मंगलाचरणम् ॥

❋ दोहावली ❋

दोहा:—वन्दौ श्रीगुरु पद कमल, दीनन दया अपार ।
जिनकी महिमालेश सों, टीका रची उदार ॥१॥
श्रीमद्रामसखेन्द्र जू, दोहा रच्यो अनूप ।
यामें सब वर्णन कियो, श्रुति सिद्धान्त स्वरूप ॥२॥
पढ़िहैं सज्जन सुमन मन, पइहैं मन विश्राम ।
याते है नरतनु सफल; सुन्दर सुचि परिणाम ॥३॥
भाव कठिनता देखि मैं, मनमें कियो विचार ।
याकी टीका रचे बिन, नहिं समुझहिं श्रुतिसार ॥४॥
याते है टीका राची, पढ़िहहिं परम सुजान ।
अरु प्रमोदबन विहारिहूँ, लहिहहि श्रेय निदान ॥५॥
पढ़ो सुजन मन लायकै, पयहो मन विश्राम
यह असार संसार में, यहिते कहा ललाम ॥६॥
यह माधुरी सुलाल की, धर राखो मनमाहिं ।
जैसे लोभी धन धरत, काढ़त बहुत डराहिं ॥८॥
श्रीमद्राम सखेन्द्र कृति, दोहावली सुनाम ।
सुन्दर याके मनन से, हिय आवत श्रीराम ॥८॥

मूल दोहा :—

नयन अलौकिक कमल लखि, राम अलौकिक भानु ।
रामसखे फूले कमल, रवि लौकिक इमि जानु ॥ १ ॥

भावार्थ:—जैसे कि सूर्य को देखकर कमल विकसित हो जाते हैं इसी प्रकार लोकातीत श्री रामरूप सूर्य भगवान को देखकर लोकातीत हृदयरूपकमलनेत्र विकसित हो जाते हैं ॥१॥

यथा :—उपमानोपमेयत्व मेकस्यैव त्वनन्वयः ।

[सा० दर्पण दशम परिच्छेद कारिका २६]

१ टिप्पणी:--जो पदार्थ मनवाणी का विषय होता है वह लौकिक है, तथा जो पदार्थ मनवाणी का विषय नहीं हैं वह अलौकिक कहा जाता है । जिस प्रकार नेत्रों से देख पड़ने वाले सूर्य को देखकर नेत्रों से देख पड़ने वाले कमल विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार अलौकिक [लोकातीत] श्रीराम रूप सूर्य को देखकर आभ्यन्तरिक [अन्तः करण का] हृदय रूप कमल नेत्र विकशित हो जाता है । सूय और कमल में ऐसा स्वाभाविक सम्बन्ध हैं कि सूर्य की किरणों का स्पर्श लगते ही कमल विकसित हो जाते हैं वैसा ही जीवात्मा का अन्तःकरण रूप कमल नेत्र परब्रह्म परमात्मा श्रीराम रूप सूर्य्य का साक्षात्कार होने पर खिल जाता है । यहाँ उपमेयोपमा अलंकार तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

उदाहरण:—राजीव मिव राजीवं जलं जलमिवाजनि ।
चन्द्रश्चन्द्र इवातन्द्रः शरत्समुदयोद्यमे ॥

उत्प्रेक्षा का लक्षण तथा उदाहरण आगे दिया गयाहै ॥१॥

लगत रामप्रिय रवि चषन, कुल नातो अतिमान ।
रामसखे मनचन्द सों, लगे लगो दृग जान ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे किसी पेय (पीने लायक) पदार्थ को देखकर मन में चाह होती है कि मैं इसे पी जाऊँ, उसी प्रकार सगोत्रीय (एक गोत्रका) सम्बन्ध होने से श्री सूर्य भगवान को श्रीराम भद्रजी अत्यन्त प्रिय हैं । तथा जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर मन परमाह्लादित होता है उसी प्रकार जब जिस प्राणी का मन श्रीरामलाल जी में लगजाय तब कहना चाहिए कि इसप्राणी के नेत्र भगवान श्रीरामभद्रजी में लगगये हैं ॥२॥

सुरभी युवती हृद कमल, विरह चन्द्र दिन लेख ।
रामसखे फूले कमल, साँझ अवध रवि पेख ॥ ३ ॥

टिप्पणी:--श्रीरामभद्रजी सूर्य वंशीय हैं, यथा.--"क्वसूर्यप्रभवो वंशः क्वचाल्प विषयामतिः ।" इति रघुवंश काव्यम् प्र० सर्ग २ । चन्द्र की उत्पत्ति भगवान के मन से है । यथा:--चन्द्रमा मनसो जातः, चक्षोः सूर्य्योऽजायत् । इति सहस्र शीर्षा पुरुषसूक्त ॥ २ ॥

भावार्थः—दिनमें प्रिय वियोग रूप चन्द्र को देख कर युवतियों का हृदय रूप कमल मुरझा गया था। किन्तु संध्या समय पुनः प्रिय संयोग रूप सूर्य्य को देखकर मुरझाया हुआ उन युवतियों का हृदय रूपकमल पुनः विकसित हो गयो१ ॥३॥

यहां रूप कालङ्कार है यथा :—

" रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे । "

[इति साहित्यदर्पण दशम परिच्छेद, कारिका स०२८]

और इसी को विरुद्धालङ्कार भी कह सकते हैं। यथाः—

जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैः, गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः ।
क्रिया क्रिया द्रव्याभ्यां यद् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः ॥
विरुद्धमेव भासेत् विरोधोऽसौ दशा कृतिः ।

[इति सा० द० द० परिच्छेद का० ६८]

टिप्पणीः--यह बात प्रसिद्ध है कि दिन में चन्द्र प्रकाशित रूपमें नहीं रहता तथा न रात में कमल ही विकसित होता है किन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि दिन लेख, इसमें समझना चाहिए कि कवि सम्प्रदाय में [कवियों के यहां] दिन तथा रात लोक विचक्षण माना गया है। अन्यथा कैसे कहते कि " दिन लेख " इसी से यह अनुमान होता है कि युवतियों का हृदय कमल भी लोक विलक्षण कमल है। वही कहते हैं " सांझ " इत्यादि।

प्रथम उदाहरण यथा:—

तव विरहे मलयमरुद्धवानल: शशि रुचोऽपि सोष्माण: ।
हृदय मलिस्तमपिभिन्ते नलिनीदलमपि निदाघरविरस्या: ॥३॥

टेढ़ी जुलफन अवध नृप, बाधे पचन माह ।
रामसखे यह छवि निरखि, बढ़ै सखिन रस चाह ॥ ४ ॥

भावार्थ:—अवध नरेश श्री दशरथ किशोर जी अपनी घुघुआरी जुलफों में शिरपेञ्च बांधे हुये हैं। इसी लिए ऐसी अलौकि श्रीराम शोभा को देखकर सखियों के अन्त:करण में श्रीराम लाल जी से मिलने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठा पैदा होती है ॥ ४ ॥

अञ्जनयुत दशरथ सुवन, भये मुनिन चित चोर ।
रामसखे यह माधुरी, निरखत बृद्ध किशोर ॥ ५ ॥

भावार्थ:—श्री दशरथ नन्दन श्रीराम लाल जी अपनी साधारण शोभा से ही वनवासी मननशील मुनियों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लेते है। इसी लिए अयोध्या पुर-वासी छोटे से लेकर बड़े तक श्री राम लाल जी के अञ्जन युक्त कमल नयनों की माधुरी (शोभा) के देखने में निरन्तर दत्त चित्त रहते हैं ॥ ५ ॥

मुकुर कपोलन रामके, पीक दिखाई देत ।
रामसखे सुख को समय, ऐंच चित्त को लेत ॥ ६ ॥

भावार्थः—दर्पण सदृश चिक्कन श्री राम लाल जी के कपोलों में ताम्बूल की लालिमा दीख पड़ती रहीहै। यह मुखार विन्द की सुन्दर माधुरी रसज्ञों के चित्त को अपनी ओर खींचे लेती हैं, ऐसी उत्प्रेक्षा १ होती है ॥ ६ ॥

रामसखे लखि राम दृग, समर[१] समर शर पीन ।
वन वन में चारों दुरे, कञ्ज खञ्ज मृग मीन ॥ ७ ॥

भावार्थः—कामदेव के संग्रामवाण के सदृश श्रीराम-लाल जी के दीर्घ तथा मनोहर नेत्रों को देखकर स्पर्धा (डाह)

१--टिप्पणीः--उत्प्रेक्षालङ्कार है यथाः--

भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधामता।

वाच्या उत्प्रेक्षा का दूसरा -उदाहरणः--

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघा विपर्ययः।
गुणा गुणानुवन्धित्वात्तस्य स प्रसवा इव ॥
साहित्य दर्पण दशम परि० कारिका ॥ ४० ॥ ६ ॥

टिप्पणी --१--इस दोहे में समर शब्द का दो वार प्रयोग किया गया

वश कमल और मछली जल में छिप गये तथा खञ्जन (पक्षी) और हिरण जंगल में जाकर लुक रहे ॥ ७ ॥

जाति विकृत की विकृतता, गनय को श्रुति कुलचार।
रामसखे जब लाल की, लगय दृगों की मार ॥ ८ ॥

भावार्थः--जब किसी प्राणी में श्रीराम लाल जी के मनोहर नैनों की मार लग जाती है तब वह प्राणी जिस जाति में पैदा हुआ है उस जाति के नियमादिकों के पालन रूप विकारों की अवहेलना (असावधानी) कर देता है। तथा वेद प्रतिपादित सन्माग का भी अनुसरण नहीं करता है। लोक में भी देखा जाता है कि जब किसी प्रेमी जन का मन किसी प्रेम पात्र में लग जाता है तब वह किसी अपने सुहृद माता पिता तथा गुरुओं की सदुपदेश वार्ताओं को नहीं मानता है।

है इस लिये एक सभर शब्द का तात्पर्य स्मर शब्द से है। स्भर नाम काम का है। और दूसरा समर शब्द संग्राम का द्योतक [परिचायक] है।

यह काव्य गुण है। "वनवन में चारो दुरे" यहां एक बन शब्द से अरण्य [जंगल] लिया है और दूसरे बन शब्द से जल लिया गया है। वन जल का नान है और वन प्रसिद्ध ही है, यथा -वनंसलिल कानने। अमरकोष तृतीय कारड नानार्थक वर्गः श्लोक १२६ ॥ ७ ॥

इस दोहे में भी उत्प्रेक्षा अलंकार है।

यही बात स्वयं ग्रन्थकार इसी "दोहावली" में कहेंगे। यथा:—जुल्फैं छोड़े बदन पै मारत राम सुजान इत्यादि ॥८॥

नकमुक्ता रघुराज के, राजत अतिहि विशाल।
रामसखे जनु कमल पय उदय भयो कवि हाल ॥ ९ ॥

भावार्थ:—जिस प्रकार अभी इसी समय में जलमिश्रित (जल से मिला हुआ) कमल पत्र में ऊषा काल में उदय हुए शुक्रतारा की पड़ती हुई कान्ति शोभित होती है। उसी प्रकार श्रीराम लाल जी के मुखारविन्द के नासिका प्रदेश में विशाल (बड़ा) नकमुक्ता (नासिका भरण) मोती दाना अत्यन्त सुशोभित होता है। यहां तुल्ययोगिताऽलंकार है। १ ॥९॥

दृगनवचाय गुलाल कौ, डारौ वाकी ओर।
रामसखे यह नव वधू, तुम नव अवधकिशोर ॥१०॥

टिप्पणी:--१--तुल्ययोगिता लकार का यह लक्षण है।

यथा:—पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत।
एकधर्माऽभि सम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता॥
[सा० द०द० परि० कारिका ४८]

उदाहरण:--यह है यथा—

तदङ्ग मार्दवं द्रष्टुः कस्य चित्ते न भासते।
मालती शश भृल्लेखा कदलीनां कठोरता ॥ ६ ॥

भावार्थः—किसी सखी का कहना है कि हे श्रीरामलाल जी यह होली का दिन है। और आप युवराज राजकुमार हैं इस लिए रंग गुलाल का खेल अवश्य करें इन नवीन युवतियों का भी नया उत्साह है। आपके साथ होली खेलने का। इसलिए इन युवतियों के नेत्रों को बचाकर रंग डालें ॥ १० ॥

प्रीतिरीति अति कठिन है, कहिवे की कछु नांहि ।
रामसखे जातन लगी, सो जानें जिय मांहि ॥ ११ ॥

भावार्थः—प्रेम का मार्ग अत्यन्त कठिन है। कोई कहकर बता नहीं सकता है। जैसे कि गूँगा मनुष्य मिष्ठान्न का स्वाद नहीं बता सकता है। उसी प्रकार प्रेम-मार्गका पथिक (बटोही) इस प्रेम के रास्ता को नहीं बता सकता है। ग्रन्थकार का कहना है कि "जा तन लगो सो जानै जिय मांहि" भाग्यवश जिस मनुष्य में यह प्रीति पैदा हो जाती है वह मनुष्य केवल अपने मनही में उसका अनुभव करता है।

यथा—प्रेम पन्थ अति ही कठिन सबपय निवहत नाहि, ।
चढ़ि के मोम तरंग पय चलिवो पावक मांहि ॥ ११ ॥

हम तुमको तनमन दियो, तुम न लखी यह प्रीति ।
राम सखे का कोजिये देखो यह अनरीति ॥ १२ ॥

भावार्थः—मैने आपके लिए अपना तन मन सब कुछ समर्पण कर दिया। किन्तु आपने इस स्नेह की ओर कुछ भी

ध्यान नहीं दिया। देखिए यह बात अच्छी नहीं है। यह अनरीति है। परन्तु किया क्या जाय। प्रेमी (प्रेम करने वाले) प्रेम पात्र (जिसमें प्रेम करते हैं) से कुछ कह नहीं सकता है प्रेमी जनका कुछ बस नहीं है ॥ १२ ॥

तन जो हमरो फिरत है, मन हमरो तुम पास ।
राम सखे विनु तन मिले, यद्यपु मनजू उदास ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे श्रीरामलालजी ! यद्यपि मेरा यह शरीर, अपने किये हुए कर्मों के आधीन होकर जहां तहां योनियों में चक्कर मारता हुआ घूमता फिरता है। किन्तु मेरा मन आपही के पास निरन्तर बना रहता है। तथाऽपि हे प्रियतम ! इस देह से अङ्कभर आप से मिले बिना मेरा मन सदा ही उदास रहता है ॥ १३ ॥

तुम हमसे रूठे रहत, हम तुम्हरे आधीन ।
राम सखे नहिं चाहिए, ऐसी तुम्हें प्रवीन ॥१४॥

भावार्थः—हे सर्वज्ञ श्रीरामलाल जी ! आप मुझसे अप्रसन्न रहते हैं और मैं आपके आधीन हूँ। चाहे जो करें, आपकी इच्छा पर निर्भर है। ऐसी दयनीय दशा पर मेरे साथ आपके लिए निर्दय ब्यवहार करना उचित नहीं है ॥ १४ ॥

अवध नगर सों आयके, चित्रकूट की खोर ।
रामसखे मन हरि लियो, सुन्दर युगुल किशोर ॥१५॥

भावार्थः—ग्रन्थकार श्रीभद्रामसखेन्द्र निध्याचार्य जी का कहना है कि श्रीरामलाल जी तथा श्री लखनलाल जी दोनों भ्राता श्री अवधपुरी से आकर, श्री चित्रकूट के मार्ग में दोनों सुन्दर किशोर अवस्था वाले अपना सुन्दर दर्शन दिखाकर हमारे मन को अपने बशमें कर लिये ॥ १५ ॥

बड़े बड़े नैना मारने, घूघरवारे वार ।
रामसखे मनवसगयो; सुन्दर राजकुमार ॥ १६ ॥

भावार्थः—रमणीय सुन्दर किशोर अवस्था वाले दोनों राजकुमारों पर हमारा मन लुभा गया है। जिन राजकुमारों के बड़े-२ विशाल नेत्र हैं तथा घुँघुआरे केश हैं ॥ १६ ॥

रतन क्रीट कटि पीतपट, कर धनुही अरुतीर ।
रामसखे मन बसत नित, वनमाली रघुवीर ॥ १७ ॥

भावार्थः—श्रीरामलाल जी के शिर में रत्नजटित क्रीट विराजता है तथा कटि प्रदेश में पीताम्बर धारण किये हुए हैं। दक्षिण हाथ में वाण और दक्षिणेतर (वाम) भुजा में धनुष को लटकाये हुए हैं जिनके कण्ठप्रदेश में लम्बायमान

वनमाला[1] सुशोभित हो रही है। ऐसी अलौकिक श्री रघुनन्दन जीकी शोभा हमारे मनमें निरन्तर वास करती है ॥ १७॥

कामशृङ्गार विहार को, मूल अवध पतिरूप ।
श्याम राम पुनि धनुषधर, रामसखे पुनि भूप ॥ १८ ॥

भावार्थः—ग्रन्थकार का अभिप्राय यह है कि दशरथ किशोर श्रीरामलालजी का जो रूप जो सौन्दर्य है, वही कामदेव के शृङ्गार तथा विहार में मूल कारण है। मूल कारण होनेका विशेष कारण यह है कि श्रीराम लाल जी का श्याम रंग है श्याम रंग बहुत सुन्दर होता है ।

पुनः श्रीरामलाल जी धनुधारी है और राजाधिराज महाराज हैं। इसलिए श्रीरामलालजी के सदृश कामदेव का शृङ्गार बिहार रूप रेखा इत्यादिक कुछ भी सादृश्यता को नहीं पाते हैं ॥ १८ ॥

सूर्पनखा अरु मुनिन को, मोह्यो चित्त कठोर ।
राम सखेता रूप की नकल काम चितचोर ॥ १९ ॥

भावार्थः—सूर्पणखा राक्षसी है। राक्षसों का चित्त कठोर

टिप्पणी:- १ तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात, सरोरुहैः ।
पञ्चभिः रचिता माला वन माला प्रकीर्तिता ॥
इन पञ्च पुष्पों से निर्माण की हुई माला, वन माला कही जाती है ॥१७॥

होता है। और मुनिगण निरन्तर परमार्थ विषय का चिन्तन करते हैं अतः वाह्य विषयों पर मुनियों की इन्द्रियों का व्यापार नहीं पड़ता है। किन्तु कठोर अन्तःकरणवाली सूर्पणखां राक्षसी तथा मुनियों के चित्त को श्रीरामलालजी अपनी साधारण सौन्दर्यता दिखाकर अपने आधीन कर लिया। इसीलिये श्रीरामभद्रजी की सौन्दर्यता की नकल (वनावटी) चित्तचोर कामदेव के समीप है किन्तु वास्तविक रूप माधुरी श्रीरामजी ही में बिराजती है ॥ १६ ॥

रूप अवधि दशरथ सुवन, दण्डक वन पगुधारि।
रामसखे तृणवकल धरि, करे सकल मुनिनारि ॥ २० ॥

भावार्थः—श्री दशरथ किशोर श्रीरामलाल जी सौन्दर्यता की अवधि (अन्तिम सीमा) हैं आप अपनी वन यात्रा समय में अपने श्री चरणारविन्दो को दण्डक वन में ले जाकर साधारण तपस्वी वेष में तृण बलकलो को धारण किये हुए

१- टिप्पणी:—यह बात श्री रामलाल जी के बनगवन समय की है। उसी समय सूर्पणखा तथा मुनिगण श्रीरामजी के रूप माधुर्य को देखकर मोहित हो गये थे। उस समय श्रीरामलाल मुनिवेश में स्वयं थे इसलिए साधारण सौन्दर्यता पर यह कहा है। और जब राजाधिराज वेष में हैं तब की रूप माधुरी की कौन कहै ॥ १६ ॥

सभ। मुनि तथा मुनि पत्नियों को मोह लिया। यह बात रामायणादिक सद्ग्रन्थों में प्रसिद्ध है ॥ २० ॥

अस्ननिघस्ननि पदनटनि, सोहें सियरघुवीर ।
रामसखे अङ्कितशिलन, मंदाकिन के तीर ॥ २१ ॥

भावार्थः—अस्ननि, घस्ननि, पदनटनि, इत्यादिक पदनृत्य-विशेष के परिचायक, (बतलाने वाले) हैं बैठकर नृत्यकरना घिसन कर नृत्य करना तथा चरणों से नृत्य करना इत्यादि नृत्य विशेषों से श्री सीताराम जी सुशोभित होते हैं तथा यही नृत्य विशेषों की श्री मंदाकिन गंगाजी के किनारे शिलाओं (पत्थर की चट्टानों) पर चरणार विन्दों के चिन्ह सुन्दर शोभित होते हैं।

"महारानी श्रीसीता देवीजी की सौन्दर्यता का वर्णन"

जपत कञ्ज स्रग भृङ्गले, तुल्य होन जल माँझ ।
रामसखे सियमुख निरखि, पुनि सकुचत नित साँझ ॥२२॥

भावार्थ—महारानी श्री सीताजी के मुखारविन्द की समता को पाने के लिए प्रत्येक दिन कमल जल के मध्य में रहकर भ्रम रूप स्रग (माला) को लेकर जपता है कि मैं भी श्री सीता देवी के मुखसम हो जाता हूं। किन्तु संध्या समय मुख की

सादृश्यता को नपाकर लज्जित हो जाता है और संकुचित हो जाता है ॥ २२ ॥

यहां तुल्य योग्यतालङ्कार है ।

वार वार हिमतनु धरत, वरि वरि अगिन मझार ।
रामसखे सिय चङ्ग दुति, लहत न तरू अपार ॥ २३ ॥

भावार्थः—हिम सुवर्ण) वार वार अग्नि में जल जलकर अपनी कायाकल्प करता है । कि मैं भी महारानी श्रीसीताजी के अङ्ग (देह कान्ति) सम हो जाऊँ । किन्तु सीताजी में अपार सौन्दर्य मधुरिमा है इसलिए सुवर्ण के किये हुए सभी तपस्या उद्योग विफल हो जाते हैं ।। २३ ॥

दाड़िम की छाती फटी, दामिन दुरत लजाय ।
रामसखे सियदन्त लखि, मुक्ति परे जलधाय ॥ २४ ॥

भावार्थः—महारानी श्रीसीता जी के दन्त पक्तियों की मनोहरता को देखकर विचारे दाड़िम (अनार) की छाती फट गई । मारे शोक के कलेजा चूर्ण होकर विथर गया । तथा दन्तों के प्रकाश को देखकर दामिन (बिजली) लज्जावती होकर (सरम खाकर) छिप जाती है । और मोती भी इन दन्तों की मनोरमता को देखकर जलमें छिपे बैठे हैं ।

यहां पर उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ २४ ॥

रामसखे सिय वदन की, उपमा देवे काज ।
गढ़त मिटावत आजु लगि, शिल्प ताज उड़राज़ ॥२५॥

भावार्थः—शिल्पकला में निपुण श्री ब्रह्माजी महरानी श्री सीताजी के मुखारविन्द की उपमा देने के लिए उड़राज (चन्द्रमा) को आज तक घटाते बढ़ाते हैं। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा वढ़ते हैं तथा कृष्ण पक्षमें घटते हैं। इस पर उत्प्रेक्षा होती है कि यह चन्द्रमा का घटना बढ़ना नहीं है किन्तु ब्रह्माजी सीता जी के मुखार बिन्द का साहश्यताके लिए बढ़ाते घटाते हैं।

अभी तक चन्द्र समता को नहीं पा सका। उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ २५ ॥

रामसखे सिय बदन सों, तौल्यो तब विधि सोम ।
तारा सब अहड़ाधरे, तऊ गयो शशि ब्योम ॥ २६ ॥

भावार्थः—पीछे कहे दोहे के कथनानुसार जब ब्रह्माजी को सन्तोष नहीं हुआ तब पुनः इस दोहे से महारानी श्री सीताजी की मुख कान्ति की साहश्या के लिए चन्द्रमा की कान्ति को तराजू पर घर कर तौला और बराबर होने के लिए तारागणों को भी रख दिया किन्तु सीताजी की कान्ति की तुलना न हो सकी। इसीलिए चन्द्र ऊपर आकासमें चला गया। वही कहते हैं-

"तऊगयो शशिव्योम" इत्यादि। यहाँ पर तुल्य योग्यता अलंकार है ॥ २६ ॥

राम सखे प्रिय दृग पलन, तौली सिय छबिभार।
भई भौंहगाढ़ी कुटिल सहिन सकीं अति भार ॥ २७ ॥

भावार्थः—कामदेव अपनी प्रिया रति के नेत्र रूप तराजू पर धर कर श्री सीताजो की छबि (कान्ति) को तौला। इसका परिणाम यह निकला कि सीताजी के छबि का अत्यन्त भार रति की भौंहें न सह सकीं, इसीलिए अत्यन्त कुटिल (टेढ़ी) हो गईं। वही कहा है:-- "भई भौंह गाढ़ी कुटिल" इत्यादि ॥२७॥

जुल्फै छोड़े बदन पर, मारन राम सुजान।
रामसखे अवक्यों वनै, जप तप संयम ध्यान ॥ २८ ॥

भावार्थः—विज्ञ (परमसुजान) श्रीरामलालजी अपनें मुख कमल पर जुल्फों को फैलाये हुए हैं। इसीलिए अलौकिक मुख माधुरी पर हमारा मन फंसा हुआ है। मन एक ही है इस कारण जप तप संयम तथा ध्यानादिक किस प्रकार बन सकते हैं ॥ २८ ॥

जिनके हिय पिघले नहीं, देखि रूप सुनतान।
रामसखे तजिए तुरत, वे नर महा पषान ॥ २९ ॥

भावार्थः—सुन्दर रूपको देखकर तथा संगीत सम्बन्धी अच्छी अलाप को सुनकर जिन लोगों के हृदय नहीं पिघलते

हैं। उन लोगों के हृदय पत्थर सदृश महान कठोर हैं।

ऐसे लोगों का संग बहुत शीघ्र त्याग देना चाहिये ॥२९॥

काम क्रोध अरु लोभ हूँ, तजे होत कछु नाहिं ।
रामसखे दृग राम के, लगे न तो जिय माहि ॥ ३० ॥

भावार्थः—यदि रामलालजी के कमल नेत्रों का प्रकाश जिस व्यक्ति के हृदय स्थल में नहीं हुआ तो काम क्रोध तथा लोभादि दोषों का परित्याग करने पर भी कुछ लाभ नहीं है। वही कहा हैं :-"लगे न तो जियमाहि" इत्यादि ॥ ३० ॥

यहां रूप की चोट को, करैं नहीं दृग कोट ।
रामसखे प्रभुरूप की, सो कह जाने चोट ॥३१ ॥

भावार्थः—जो लोग यहाँ (संसार में) लौकिक सौन्दर्यता के आघात को अपने नेत्र रूपी किला में छिपाकर सुरक्षित रूप से नहीं रख सकते हैं। वे लोग सर्व समर्थ श्री रामलाल जी के सौन्दर्यता रूप आघात को किस प्रकार सह सकते हैं। यही कहा है:--"सो कह जाने चोट" इत्यादिक ॥ ३१ ॥

मिलै द्रव्य पुनि अर्वलगि, मिलै नृपति अति चाहि ।
रामसखे जग रसिक संग, यह दुर्लभ कलिमाहि ॥ ३२ ॥

भावार्थः—लोग चाहें तो संसार में अर्व खर्व संख्यक द्रव्यों को कमा कर संग्रह कर सकते हैं, और चाहें तो प्यार के साथ

राजाओं मे भी मिल सकते हैं। किन्तु इस घोर भयङ्कर कलि-काल में रसिक[1] महात्माओं का सत्संग नितान्त दुर्लभ तर है। वही कहा है ॥ ३२ ॥

जागृत सुखसम रसिक[2] सँग, स्वपनो जग सुख संग।
रामसखे अस समझही जे बूड़े हरि रंग ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो भाग्यवान जन रसिक महात्माओ का सत्संग करके श्रीराम रूप रस रंग में डूब कर रंग गये हैं उन महात्माओं की यह समझ है कि रसिक महात्माओं का जो सत्संग रूप सुख है, वह सुख जागृत अवस्था के सदृश है। और संसारिक लोगोंका संगसुख स्वप्नावस्थाके सदृश है ॥३३॥

१-टिप्पणी:-भगवत्संबन्धी रसज्ञ को रसिक कहा जाता है, वे महात्मा ही होते हैं। रसा वै सः। रसमेवाऽयं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति, इति श्रुतिः ॥ ३२ ॥

(२) टिप्पणी:-जिस प्रकार जागृत अवस्था की सभी वस्तुयें स्थायी रूप में विद्यमान रहती हैं उसी प्रकार रसिक महात्माओं के सत्संग से जो सुख होता है वह स्थायी रूपमें बना रहता है। और जो सुख सांसारिक लोगों के संग से होता है वह सुख क्षणिक होता है। जैसे कि स्वप्नावस्था की वस्तु स्थायी नहीं होती है। जागने पर सभी दुःख सुख मिट जाते हैं ॥ ३३ ॥

रसिकन के ढिंग वैठिके, कर न सकत विधिसान।
रामसखे जे जगतजिय, तिनको कौन प्रमान ।। ३४ ।।

भावार्थः—रसिक महात्माओं के पास में बैठकर सृष्टि कर्ता ब्रह्मा जी भी अपने ऐश्वय को प्रकाशित नहीं कर सकते हैं। सांसारिक जीवों की तो गणना ही क्या है ।। ३४ ।।

मिलै सजीवन ज्ञान सुख, और राज्य भरपूर।
समझे विना उपासना, रामसखे सब धूर ।। ३५ ।।

भावार्थः—चाहे सजीवन मूल रूप ज्ञानानन्द ही क्यों न मिल जाय' और चाहे अकण्टक राज्य मिल जाय, किन्तु उपासना के जाने बिना सब धूलि सदृश है ।। ३५ ।।

ग्वाल वेष चित चोर हरि हदसुपुनि नृपवेष।
रामसखे याते भजत रघुवर नाम विशेष ।। ३६ ।।

भावार्थः—श्रीनन्दनन्दन भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी आभीर वेषधारी होकर भी गोपियों तथा भक्तों के चित्त को आकर्षित कर लिए हैं। पुनः नृपवेष को धारण करने वाले श्री दशरथ नन्दन श्री रामलाल जी सीमारहित अपनी रूप माधुरी से भक्तों के चित्त को आकर्षित करलें इसमें सन्देह ही क्या है। यही कारण है कि श्रीरघुनाथजी का नाम विशेष है ।।३६।।

सीताराम विवाहते, नातो भयो उदार।
रविवंशिन के लगत हैं, निमिवंशी सबसार[1] ॥ ३७ ॥

भावार्थः—श्री मिथिलापुरी में जबसे श्रीसीता देवीके साथ श्रीरामलाल जी का विवाह हुआ है तबसे यह सुन्दर सम्बन्ध हो गया कि रविवंशिन के सभी निमिवंशी नाते में साले लगते हैं ॥ ३७ ॥

लोभी इष्ट न मानहीं, निर्लोभिन के प्रान
तज्यो विवर प्रभु यादवन, गहि लायो हनुमान ॥३८॥

भावार्थः—लोभी मनुष्य का इष्ट में प्रेम नही होता हैं। किन्तु जो मनुष्य लोभ रहित है उसको अपना इष्ट देव प्राणों से भी बढ़कर प्रियतम होता है।

यदुवंशिओं ने श्रीकृष्ण चन्द्रजी का यावबान की गुफा में प्रवेश करने के समय में परित्याग कर दिया था किन्तु वायु नन्दन श्री हनुमान जी ने रावण की शक्ति से मूर्छित हुए श्रीलषण लाल जी को अपने हृदय में लगाकर निवास स्थानमें

१-टिप्पणीः—इस दोहे में ग्रन्थकार अपना नाम नहीं दिये हैं। टीकाकार ॥३७॥

ले आये। अपने प्राणों की परवाह नहीं की[1] ॥ ३८ ॥

सुनि यदुवंशिन मणिकथा, रामसखे मन खेद।
लोभ समान न पाप कछु, करत भक्ति में भेद ॥३९॥

भावार्थः—यदुवंशियों के मणि की कथा सुनकर मनमें दुःख होता है कि लोभ के समान कोई दूसरा पाप नहीं है जो कि भक्तों के मनमें भेद भाव को पैदा करने वाला है ॥ ३९ ॥

मणि समन्त हित यादवन, प्रभु सों कियो अभाव।
रामसखे जे अपर जिय, तिनको कौन उपाव ॥ ४० ॥

टिप्पणीः-ऋक्षराज श्री यावबान की कन्दरामें जवस्यमन्तक मणि की खोज में श्रीकृष्णजी गये थे, उस समय यादव गुफाके भीतर नहीं गये। केवल श्रीकृष्ण चन्द्र जी सुदर्शन चक्र की सहायता से कन्दरा के भीतर प्रवेश किये।

वह बात श्रीमद्भागवत पुराण दशम स्कन्ध में प्रसिद्ध है। किन्तु जब श्री लक्ष्मण जी के रावण की शक्ति लगी और लषणलालजी को मूर्च्छा आगई, तब श्री हनुमानजी उस दशा में अपनी चिन्ता न करते हुए श्रीलक्ष्मण जी को उठाकर हृदय में लगाकर श्रीरामलाल ज के समीप ले आये।

यह बात श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण युद्ध कान्ड में प्रसिद्ध हैं। संक्षिप्त रूप में यहां कथा का दिग्दर्शन मात्र करा दिया गया है ॥३८॥

भावार्थः—स्यमन्तक मणि के लिए यादवों ने भगवान श्रीकृष्ण चन्द्रजी के साथ विरोध किया था, जो सांसारिक जीव हैं उनकी इस विषय में कौन कथा कही जाय ॥ ४० ॥

॥ श्री हनुमान जो के महत्व पर ॥

सिय को जिन संकट हरयो, उतर समुद्र अपार ।
रामसखे ताके शरण, मिटत सकल दुख भार ॥ ४१ ॥

भावार्थः—जो श्री हनुमान जी अपार समुद्र को उतर कर श्री महारान सीता जी के महान् कष्ट को दूर किये हैं । उन वायुनन्दन श्री महाबीर जी की शरण में जाने से सभी प्रकार के इसलोक तथा परलोक सम्बन्धी संकट दूर हो जाते हैं ॥४१॥

परा प्रकृति मकार सिय, रेफ पुरुष पर राम[१] ।
रामसखे अपरा तजे, सो पावे निज नाम ॥ ४२ ॥

भावार्थः—राम इन दो अक्षरों में जो मकार है वह परा

---

[१] टिप्पणी:-ब्रह्म रकार जीव आकारा । प्रकृति मकार रूप संसारा ।
चौपाई संख्या ७६ । १० ॥

रकारो रामचन्द्रश्च चिन्मयानन्द विग्रहः ।
आकारश्च स्वयंभूस्याद्रेफो रामस्तुनिर्गुणः ॥
इति सटीक "नृत्य राघव मिलन" श्री रामनामार्थ निरूपणम् ।
पृष्ठ संख्या २६२ नवीन संस्करण ॥

प्रकृति महारानी श्रीसीता जी का स्वरूप है तथा रेफ (रकार) पर पुरुष श्री रामजीका स्वरूप है। और दीर्घाकार अपरा प्रकृति के विशिष्ट जीव का स्वरूप है।

आचार्य श्रीरामसखेन्द्र निधिजी का आदेश है कि अपरा तजे इत्यादि। इसका भाव यह है कि माया विशिष्टता ही संसार है। यदि जीवात्मा मायिक ब्यवहारों को अनित्य समझ कर त्यागदे तो वास्तिवक अपने स्वरूपको पहिचान जाय और इस संसार बंधन से मुक्त हो जाय ॥ ४२ ॥

रामभजे दोऊ मिलें, भुक्तिमुक्ति जग माँहि।
रामसखे सो पेखिये, भुसुण्डि विभीषण पाँहि ॥ ४३ ॥

भावार्थः—श्रीराम नामके भजनसे संसार में भुक्ति (अनेक प्रकार के सुखोपभोग्य पदार्थ) तथा मुक्ति (अन्तमें सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर श्रीराम धाम को पधार जाना) इत्यादि सभी पदार्थ सुगम हो जाते हैं। निष्काम श्रीरामपद्मानुरागियों के लिए किसी वस्तु की कमी नहीं होती है। इसमें प्रमाण श्री काकभुसुण्डि जी तथा राक्षस राज श्री विभीषण जी हैं ॥४३॥

पराचीनवरही नृपति, भये यज्ञ जियकाल।
ये भक्षण हित हतत नित, तिनके कवन हवाल ॥४४॥

भावार्थः—प्राचीन वर्ही नाम के कोई राजा अपने यज्ञ में अनेक प्रकार के पशुओं का वध कराके, अग्नि कुण्ड में हवन

कर दिये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वेही जीवात्माएं दूसरे जन्म में प्राचीनवर्ही राजा के अन्त समय में काल सदृश घातक हुए। यह बात पुराणों में प्रसिद्ध है।

किन्तु जो लोग केवल उदर पोषणार्थ निरन्तर जीव हत्या करते हैं उन लोगों की कौन सी यातना होगी कौन कहे ॥४४॥

मन्त्र रामतारक बिना, तरय न जिय जगकोय।
रामसखे ज़िमिनृपति को, यश न नीति विनु होय ॥४५॥

भावार्थः—जिस प्रकार राजा के लिए अच्छी नीति का अवलम्ब लिये बिना सुन्दर यश की प्राप्ति नहीं होती है। उसी प्रकार रामतारक मन्त्र के लिये बिना संसार सागर से जीव मुक्त नहीं हो सकता है ॥ ४५ ॥

रामनाम मारग सुखद, रसिक न को परचार।
रामसखे सबकी अवधि, जात अवधि भवपार ॥ ४६॥

भावार्थः—रसिक महात्माओं द्वारा प्रचालित किया गया यह श्रीराम नाम रूप सन्मार्ग सवों के लिए सुख का देने वाला है। जिस प्रकार राजमार्ग का अवलम्ब लेकर अन्धे लोग भी अपने निश्चित स्थान को पहुँच जाते हैं उसी प्रकार इस राम नाम के अवलम्ब से सांसारिक जीव संसार के बन्धनों से मुक्त होकर परधाम को चले जाते हैं। भाव यह है कि यह श्री रामनाम सभी पदार्थों की अवधि है (अन्तिम सीमा है)।

इसीलिए यह रामनाम प्रचलित जनन् मरण संसार रूप चक्र की दूर करने में चर्म (अन्तिम सीमा) है ॥ ४६ ॥

विषय भोग जग स्वप्नवत्, समुझि परै मन माँहि ।
रामसखे भज राम को, बस प्रमोद द्रुम छांहि ॥ ४७ ॥

भावार्थः—वस्तुतः मनसे निश्चित करने पर इस संसार में बिषयेन्द्रिय संयोग से उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ (भोग विलास) स्वप्न सदृश क्षणिक है। इसलिए हेमन ! इन पदार्थों की लिप्सा (पाने की इच्छा) का परित्याग करके श्री प्रमोद वन के द्रूम का छाया का अवलम्ब लेकर श्रीरामनाम का मन वाणी से जप करो इसी में तुम्हारा कल्याण है ॥४७॥

कहाँ योग कहँ भोग सुख, कहाँ द्रव्य सञ्चार ।
प्रभु सों जो अन्तर परै, सो सब डरिये भार ॥४८॥

भावार्थः—कहाँ तो योग (समाधि) का विषय मन सहित दशेन्द्रियों को वश में करके परमार्थ वस्तुओं का चिन्तन करना और कहाँ सांसारिक भोग विलासों का सुख, दोनों में पारस्परिक महान् अन्तर है । तथा ऐसा ही द्रव्य का संचय करना एक अलग विषय है। परन्तु भगवान श्रीराम भद्र जी की सेवा सत्कार में व्यवधान (रुकावट) है तो ये सब को भार में झोंक देना चाहिये ॥४८॥

समझत नहिं धन अन्धजे, अपनो क्षेम अक्षेम ।
रामसखे का नेम यह, तिनसो करत न प्रेम ॥४६॥

भावार्थः—जो धनान्ध (धन से अन्धे) हो रहे हैं, वस्तुतः वे लोग अपने कल्याण अकल्याण को नहीं समझते हैं। अतः हमारा नियम है कि उन लोगों से प्रेम नहीं करना। भाव यह है कि वे लोग सांसारिक विषयों में इतने निमग्न हैं कि परमार्थ रूप प्रेम को जानते ही नहीं हैं ॥४६॥

राज्य समर्पण करें सब, कोउ नृप सहित निकेत।
तारक मन्त्र दिये बिना, रामसखे नहि लेत ॥५०॥

भावार्थः—आचार्य जी का आदेश है कि कोई राजा ही क्यों न हो, और अपना निकेत सहित सम्पूर्णराज्य हमारे लिए समर्पण कर देना चाहे, किन्तु रामतारक मन्त्र के दिये बिना हमको स्वीकार नही है ॥५०॥

रसिक गुरुन प्रभु रामहित, खर्चत द्रब्य डरात।
अति उदार सुत सुता हित, ते ठग भक्ति दिखात ॥५१॥

भावार्थः—भगवद्रसिक महात्माओं एवञ्च सद् गुरुओं के लिए तथा सर्व समर्थ श्री रघुनाथ जी के जन्मादिक उत्सवों में द्रब्य खर्चनें में डरते हैं। किन्तु पुत्र-पुत्रिकादिकोंके विवाहादिक

उत्सवों में अत्यन्त उदारता पूर्वक धन का व्यय (खर्च) करते हैं। ऐसे भक्त वंचक (ठगोरे) हैं ॥५१॥

जाकी आंखिन पीरिया, रोग रह्यो अति छाय।
रामसखे ताको सबै, श्वेत पीत दरशाय ॥५२॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों के आंखों में पीरिया (पाण्डु-रोग) अत्यन्त अपना अधिकार कर लेता है, उन मनुष्यों के सभी श्वेत वस्तु पीली दिखाई पड़ती हैं।

भाव यह है कि मायिक ब्यवहारों में फँसे मनुष्यों को परमार्थिक व्यवहार यथावत् रूप से नहीं दृष्टिगोचर होते हैं ॥ ५२ ॥

ब्रह्म जीव के बीच में, जब लगि माया आड़ि।
रामसखे तब लगि नहीं, शुद्ध प्रेम की चाड़ि ॥५३॥

भावार्थः—जब तक परब्रह्म परमात्मा श्रीराम भद्र जी तथा जीवात्मा के वीच में माया रूपी परदा पड़ा हुआ है, तब तक प्रचण्ड शुद्ध (निष्प्रयोजन) प्रेमा भक्ति का संचार नहीं होता है ॥ ५३ ॥

राम सखे यह जगत सुख, गंगा कैसी धार।
छिन छिन औरेहि और जल, ताको करो विचार ॥५४॥

भावार्थः—जिस प्रकार श्री गंगा जी की धारा का जल छिन छिन में (क्षण २ में) अनेक रूप धारण करता है उसी प्रकार ये सांसारिक सुख एक रूप से रहने वाला नहीं है। तथा जिस प्रकार रथचक्र (गाड़ी की पहिया) क्षण क्षण में ऊपर नीचे आती, जाती है उसी प्रकार सुख के अनन्तर दुःख बना ही रहता है।

इससुख दुःख की प्रवाह रूप धारा बनी ही रहतीहै ॥४४॥

सतगुरु तट तरु को गहै, कुटुम्ब नदी भय खाय।
रामसखे ठहरात तब, सकै न धार बहाय ॥५५॥

भावार्थः—जब पुत्र कलत्रादि रूपी नदी से भयभीत हो जाओ, तब सद्गुरु रूप नदी के किनारे के वृक्ष का अवलम्ब लेकर निश्चिन्त हो जाओ। इस उपाय से तुम संसार रूपी प्रबल धारा से बच जाओगे। अन्यथा सद्गुरु की कृपा बिना इस दुस्तर भवरूप नदी को पार करना बहुत कठिन है ॥५५॥

जो जिय यह जग आयके, कियो न घर गोलोक।
रामसखे सो परत पुनि, चौरासी की ओक ॥५६॥

भावार्थः—जो प्राणी इस संसार में मनुष्य योनिमें उत्पन्न होकर सद्गुरु की कृपा का अवलम्ब पाकर श्री रघुनाथ जी के चरणारविन्दों में निष्काम प्रेमलक्षणा भक्ति द्वारा गोलोक

(साकेत-लोक) को अपना निवास स्थान नहीं बना सका, वह प्राणी पुनः इसी चौरासी लक्ष योनियों में रहने का घर पायेगा ॥ ५६ ॥

निज घर मानै आपनो, अवध सहर गोलोक ।
रामसखे तिनको लगत, जगघर अति दुख ओक ॥५७॥

भावार्थः—जिन रसिक महात्माओं ने गोलोक अवध नगर को अपना निवास स्थान मान लिया है, उन महात्माओं को यह संसार रूप घर अत्यन्त दुःखद प्रतीत होता है ॥५७॥

रामसखे लघु सँग सों, भई द्विविद मति हीन ।
कुबुद्धि करी वल भद्रसो, तैसा ही फल लीन ॥५८॥

भावार्थः—बुद्धि हीन लोगों के सहवास से अच्छे लोगों की भी बुद्धि कलुषित हो जाती है। जिसका परिणाम अनिष्ट होता है। यही कहा जाता है कि द्विविद नाम का बानर श्री-वलभद्र जी से विरोध किया, इसका यह फल हुआ कि श्रीवल-रामजी द्वारा वध दण्ड को पाया[1]।

१--टिप्पणीः-यह कथा श्रीमद्भागवत् दशम स्कन्ध उत्तरार्ध में प्रसिद्ध है ॥ ५८ ॥

पाप कुसंग पतंग तजि, सेवत वाजि¹ खदोत।
रामसखे तब जीव का, घटो चहत उद्योत ॥५६॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्यों को अपने दुर्भाग्य वस सद् गुरुओं का सत्संग नहीं प्राप्त होता है। इस लिये मनुष्य कुसंग में पड़ कर पतंग (सूर्य) सदृश भगवान् श्रीरामभद्र जी की सेवा भक्ति से वंचित रह कर खदोत (जुगनू) सदृश प्रकाश करने वाले सांसारिक वाजि (अश्व) रूप पदार्थों का सेवन करते हैं।

इस लिए वास्तविक जो जीवात्मा का प्रकाश स्वरूप है वह घटना ही चाहिए ॥५६॥ (१)

१--टिप्पणी:-यहां वाजिपद समस्त ऐश्वर्यों का उपलक्षण मात्र हैं इससे सभी सांसारिक भोग विलासों का संग्रह कर लिया गया है। ग्रन्थकार यहां खद्योत की जगह खदोत पद का ग्रहण किये हैं कि छन्दो-भंग न हो सके।

छन्दशास्त्र का नियम है कि माष की जगह मष पद का उपादान करना चाहिये परन्तु छन्द भंग नहीं करना चाहिये।

यथा:—अपि माषं मषं ब्रूयाच्छन्दो भङ्गं न कारयेत् ॥ इति

ग्रन्थकार इस दोहे से इस श्रुति का सारांश तात्पर्यार्थ स्पष्ट कर दिया है यथा:-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षम परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीत् इति॥
ऋग्वेद ऋ० १६४ श्वेतश्वतरोपनिषत्।
६ मुण्डकोपनिषद् ।१११। इति।

अन्तर टाटी कपट की, बातें करत बनाय।
मिल्यो रहै उर न मिलै, तासों कहा बसाय ॥६०॥

भावार्थः—अन्तःकरण में कपटरूपी टाटी (परदा) को लगाये हुये है परन्तु ऊपर बनावटी बातें करता है, मिला हुआ रहना चाहता है किन्तु हृदय नहीं मिलाना चाहता है, ऐसे कपटी मनुष्य के साथ कोई युक्ति नहीं चलती है ॥६०।

ज्यों लोहा लोहा रहो मिलि पारस पट ओट।
त्यों कपटी सतसंग सो लहो न हरि को कोट ॥६१॥

भावार्थः—जिस प्रकार लोहा और पारस के बीच में पट (वस्त्र) का व्यवधान (अन्तर) पड़ जाने पर लोहा सुवर्ण नहीं हो सकता है। उसी प्रकार कपटी मनुष्यों के सत्संग से मनुष्यों को हरि भगवान का कोट (सुरक्षित स्थान) परधाम नहीं प्राप्त हो सकता है ॥ ६१ ॥

मलयागिरि के निकटबसि, वांस न लहत सुवास।
सुधरत नहि त्यों निरस नर, बस सन्तन के पास ॥६२॥

भावार्थः—जिस प्रकार सार रहित वांस मलयागिरि पर्वत के पास रहने पर भी मलयागिरि (हरिचन्दन) की सुगन्धी को नहीं प्राप्त करता है। उसी प्रकार निरस (हृदय शून्य)

मनुष्य सन्त महात्माओं के पास बस कर भी नहीं सुधरता है, सत्संग के प्रभाव को नहीं जानता।

गजमुक्तन के ढेर लखि, त्यागत गोंड़ गवाँर।
रामसखे जाने विना पहिरत गुँजन हार ॥६३॥

भावार्थः—गज मुक्ताओं की ढेर (समुदाय) को देख कर भी मोतियों को नहीं पहिचानने वाला जंगली गोंड़ (अनभिज्ञ) गवाँर मनुष्य मोतियों को त्याग देता है। क्यों कि मोतियों के मूल्य को नहीं जानता है। इसी लिये गुञ्जा फलों की माला बना कर पहिनता है ॥६३॥

जो स्वाँगी ते स्वाँग रत, ते कह जानें भेद।
रामसखे कह सत असत, कह लबेद कह बेद ॥६४॥

भावार्थः—जो मनुष्य स्वाँगी (पाखण्डी) होते हैं वे मनुष्य पाखण्ड ही में रत रहते हैं। उन लोगों को सत (भला) असत् (अनिष्ट) तथा लोक परलोक का परिज्ञान नहीं होता है ॥ ६४ ॥

घर घर डोलत उदर हित, होत जगत में दीन।
रामसखे यह श्वानमत, सन्तन ने नहि लीन ॥६५॥

भावार्थः—"उदर निमित्तं बहुकृतवेषः" उदर पोषणार्थ

(रोटी के लिए) प्रत्येक घरों में घूमते फिरना, तथा संसार में दीन (गरीब) बनना इस श्वानबृत्ति (कुत्तों की वृत्ति) को सन्त महात्माओं ने नहीं स्वीकार किया है ॥ ६५ ॥

वेषमात्र रसिकन सँग, सुनत महासुख होय।
रामसखे कहिए विमल, जिय जिज्ञासी सोय ॥६६॥

भावार्थः—रसिक महात्माओं के वेषमात्र को देख कर, सुनकर, हृदय में आनन्द होता है। और यदि उन महात्माओं साथ में रह कर विमल विचार से उन महात्माओं के सिद्धान्ततत्त्व के जानने की जिज्ञासा है तो कहना ही क्या हैं। अर्थात् सुवर्ण में सुगन्ध है ॥ ६६ ॥

पात्र भेद लहि स्वाति कण, मणि कपूर विषहोय।
रामसखे तस मन्त्र गति, जान परत जग सोय ॥६७॥

भावार्थः—जिस प्रकार स्वाती नक्षत्र के जल का कण (बिन्दु) पात्र भेद को पाकर मोती, कपूर, वंशलोचन, और विष, रूप में परिणत हो जाता है। भाव यह है कि सीप को पाकर मोती, केला को पाकर कपूर, बांस को पाकर वंशलोचन और विषैले सर्प को पाकर विष हो जाता है। उसी प्रकार मंत्र की भी गति है।

पात्र भेद से मारण मोहन, उच्चाटन और वशीकरण होता है। अर्थात् इस संसार में पात्र भेद से मन्त्र भी वैसा ही फल दाता होता है ॥ ६७ ॥

रहत सदा जैसी लगन, बन्धन तन धन मांहि ।
रामसखे तैसी रहन, मुक्ति न हरि गुरु चाहि ॥६८॥

भावार्थः—प्राणी जिस प्रकार शरीर के लिए धनादिकों के संग्रह में बंधा रहता है। उसी प्रकार प्राणी मुक्ति के लिए भगवान और सद्गुरुओं में श्रद्धा भक्ति नहीं रखता है ॥६८॥

हर्यो सत्यकलियुग प्रबल, ब्यापि जगत अनीति ।
रामसखे हरि गुरुन में, रही न नेकु प्रतीति ॥६९॥

भावार्थः—प्रवल कलिकाल ने सत्य का अपहरण कर लिया है, इसी लिए सर्वत्र असत्य का ही ब्यवहार हो रहा है, इसी कारण से संसार में प्रत्येक जगह अनीति फैली हुई है यही कारण है कि भगवान और सद्गुरुओं के बचनों में मनुष्यों का थोड़ा भी विश्वास नहीं रह गया है ॥६९॥

कलि पण्डित योगी तपी, भये रूप तद् रूप ।
राम सखे कोई भगि वचे पगि हरि रूप अनूप ।७०॥

भावार्थः—इस कराल कलिकाल में पण्डित योगी और तपस्वी सभी मनुष्य कलिकाल के रूप में परिणत हो चुके हैं। ऐसे विकराल समय में जिस पर भगवान् की महती कृपा है वही भगवद् भक्त बचा हुआ है ॥ ७० ॥

भावै रम गिरि दरिन में, भावै दारन संग ।
राम सखे तव कौन डर, पगे राम के रंग ॥७१॥

भावार्थः—आचार्य चरण का आदेश है कि जब अपना मन श्रीरामलालजी की रूप माधुरी रूप रंग में रँग गया है तब चाहेपर्वतों की कन्दराओं में निवासकरें और चाहें तो स्त्रियोंके बीच में रह कर अपनें समय को व्यतीत करें, ऐसी परिस्थिति पर उसे कहीं भी डर नहीं है॥ ७१ ।

क्षणिक बुद्धि उद्विग्नमन, होय विषाद न चित्त ।
रामसखे तव जानिये, भये राम अब मित्त[1] ॥७२॥

भावार्थः—जिस परिस्थिति पर अपनी बुद्धि स्थिर हो जाय, किसी दशा में मन विकार युक्त न हो सके, तथा चित्त (चेतन शक्ति) में किसी प्रकार का विषाद (संताप) न पैदा हो, उस दशा में बिचारना चाहिए कि अब श्रीरामलाल जी हमारे प्रिय सुहृद हुए हैं ॥ ७२ ॥

वस्तु भेद समझे विना, निवहत नाहिं सनेह ।
गज मुक्तन तजि भीलनी, लावत गुंजन गेह ॥७३॥

१--टिप्पणीः- छंद भंग भय से यहां मित्र की जगह मित्त कहा है ।

भावार्थः—किसी भी पदार्थ का वास्तविक रहस्य समझे विना स्थायी (टिकाऊ) प्रेम नहीं होता है। जैसे कि मुक्ताका भेद न जानकर भीलनी (किरात की स्त्री) गजमुक्ता का परित्यागकर अपने घर में गुंजा के फलों को एकत्र करती है ।७३।

निराकार हरि तनु समझि जैसे पुर साकेत ।
रामसखे माया रहित रामधाम इक हेत ।७४।।

भावार्थः—क्या परब्रह्म परमात्मा श्रीरामभद्रजी निराकार हैं या साकार हैं? ऐसा प्रायः सभी अभिज्ञानभिज्ञ, प्रश्न उठाते हैं। उत्तर—जिस प्रकार लोगों को भगवान श्री रामभद्र जी का साकेत लोक मन वाणी का अविषय है, उसी प्रकार भगवान श्रीराम जी का स्वरूप भी मन वाणी का अविषय है इसी लिए माया रहित भगवान को निराकार कहते हैं और माया सहित भगवान को साकार रूप कहा जाता है ।।७४।।

माया रहित भुसुण्डि धर[1] रामसखे विख्यात ।
रामधाम मायिक कहत, ऐसे अधम अग्यात ।।७५।।

१--टिप्पणी:-यह बात रामायणादिक सभी ग्रन्थों में प्रसिद्ध है

यथा:—माया सम्भव सकल भ्रम, अब नहि व्यापहि तोहि ।
जानु सुत्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ।।
गो स्वामी तुलसीदासजी महाराज--उत्तरकाण्ड रामायण दोहा संख्या ।। १२७ ।।

भावार्थः—भक्त शिरोमणि श्री काकभुसुण्डि जी के आश्रम के चारों ओर योजन भर के प्रमाण में माया का अधिकार नहीं है। इस लिए काकभुसुण्डिजी का आश्रम माया रहित है। जब भगवान के सच्चे भक्तों के यहां मायिक व्यवहार नहीं है, तब भगवान के धाम को मायिक कहना नितान्त अज्ञता है। किन्तु अज्ञानी लोग भगवान के धाम को मायिक कह कर सन्तोष मानते हैं ॥७५॥

मुक्ति रूप सनकादिलखि रामसखे साकार।
निराकार शठ कहत हठ विन समझे श्रुतिसार ॥७६॥

भावार्थः—दिव्य द्रष्टामुक्त स्वरूप सनकादिक ऋषियों नें श्रुति-सिद्धान्तको अच्छी तरह समझ बूझकर परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को साकार बताया है। परन्तु हठवादी शठ स्वभाव वाले श्रुति सिद्धान्त को यथावत समझे बिना भगवानके स्वरूप को निराकार कहते हैं ॥७६॥

(इस हठवाद पर आगे के दोहे से वादी के सिद्धान्त में दोषारोपण आचार्यचरण करते हैं)।

ब्रह्मनिरवयव विगत असु ता विनु वेद न लेख।
रामसखे पुनि वेद विनु ईश्वर पथ क्यों पेख ॥७७॥

भावार्थः—जब वादी के मत में ब्रह्म निरवयव रूप रेखा रहित है तब ब्रह्म को श्वास रहित मानना ही पड़ेगा। और श्वास रहित ब्रह्म को मानने पर वेद की सत्ता नहीं रहती। जब वेद ही नहो है, तब ईश्वर तथा ईश्वर प्रतिपादित सन्मार्ग नहीं सिद्ध होता है। इस परिस्थिति पर केवल शून्यवाद ही स्थिर हो जाता है ॥७७॥

अल्प ज्ञान यह जीव को, ब्रह्म सदा सर्वज्ञ।
लहत भेद दिन रात को, कहत एकता अज्ञ ॥७८॥

भावार्थः—इस दोहे से अद्वैत वादियों के सिद्धान्त का निराकरण करते हैं। जैसे कि जीवात्मा अल्पज्ञ (थोड़ा जानने वाला) है। और परब्रह्म परमात्मा सर्वज्ञ (सम्पूर्ण पदार्थ का परिज्ञाता) है। इस लिए जीवात्मा तथा परमात्मा में दिन रात कैसा भेद है दोनों का ज्ञान एक सा, नहीं है। पुनः जीवात्मा और परब्रह्म परमात्मा में अभेद बुद्धि माननी कितनी अज्ञता है ॥७८॥

माध्वभाष्य निज द्वैत मत, मिलन द्वार हनुमान।
रामपखे विधि सम्प्रदा, उड़पी गुरु अस्थान ॥७९॥

भावार्थः—इस दोहे से आचार्य चरण अपने सिद्धान्तानुयायियों के लिए आदेश करते हैं कि हमारा माध्व भाष्य प्रतिपादित द्वैत सिद्धान्त है। और श्री हनुमान जी का द्वारा है।

विधि (ब्रह्म) सम्प्रदाय है। हमारा गुरुस्थान (बड़ी जगह) दक्षिण दिशा में उडुपी है ॥७९॥

यह मत हनुमत राम को, जियहि मिलावत आन ।
ब्रह्मा की निज सम्प्रदा, रामसखे सो जान ॥८०॥

भावार्थः—आचार्यचरण का आदेश है कि हमारा यह सिद्धान्त श्री रामभद्र जी तथा वायुनन्दन श्री हनुमान जी द्वारा प्रतिपादित है। श्री हनुमत्संहिता आदिक ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है।
इसी लिए इस सिद्धान्तानुसार, जीवात्मा--परब्रह्म-परमात्मा श्री रामभद्र जी को प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

प्रीति चहत हरिजन सुमति, चहत न अनमनअंक[1]।
रामसखे तस प्रीति ले, मिलो विभीषण रंक ॥८१॥

भावार्थः—भगवान श्री रामभद्र जी अपनें प्रिय भक्तों से अपनी भेंट में विशुद्ध बुद्धि सहित निष्काम प्रेम को चाहते हैं। कलुषित बिचारयुक्तमनवाले मनुष्यों से भगवान का स्नेह नहीं होता है। भगवान का दीनबन्धु यह नाम सार्थक है। इसीलिए

१--टिप्पणीः अङ्क नाम कलंक का है।
यथाः--कलंकाङ्कौ लाञ्छनञ्च चिह्नं लक्ष्मच लक्षणम्। इति। अमर कोषः ॥

उन्हे दीनता बहुत प्रिय है। जब श्री विभीषणजी अपनी दीनता लेकर भगवान श्री रामभद्रजी से मिले तब भगवान श्रीविभीषण जी को सप्रेम स्वीकार कर लिये। किसी बात की शंका मन में नहीं किये।८१॥

तनिक क्षणिक ऐश्वर्य हित खोवत जन्म गवांर।
रामसखे तिन को नहीं, सत अरु असत बिचार ॥८२॥

भावार्थः—जिन अनभिज्ञ (गवांर) मनुष्यों को सत् असत (भले बुरे) का ज्ञान नहीं है, वे क्षणिक स्थायी (थोड़ी देर ठहरने वाले) ऐश्वर्य (धनादिक) के लिए अपने अमूल्य जन्म को व्यर्थ खो रहे हैं किन्तु ग्लानि[1] को नहीं प्राप्त होते हैं ॥८२॥

नाम रूप गुण तेज वल, निर्गुण धाम परत्व।
वदत वेद सो लहिय पुनः, रामसखे जियतत्व ॥८३॥

१-टिप्पणीः-तत्र निर्वेदो (ग्लानिः)

यथाः—तत्व ज्ञानापदीर्ष्यादे निर्वेदस्वावमाननम्।
दैन्य चिन्ताश्रु निःश्वास वैवर्ण्योच्छ्वसितादिकृत्॥
इति साहित्य दर्पण तृतीय परीच्छेद श्लोक संख्या १४२

तत्वज्ञानान्निर्वेदो यथाः—
मृत्कुम्भवालुकारन्ध्र पिधान रचनार्थिना।
दक्षिणावर्त शङ्खोऽयं हन्तचूर्णी कृतोमया ॥८२॥

भावार्थः—वेदशास्त्र प्रतिपादित महात्माओं के मुखारविन्द से गाया हुआ भगवान श्री रामभद्र जी के पवित्र नामों का स्मरण करना, उनके रूप माधुरी का ध्यान, भगवद् गुणानुवाद ग्रन्थों को सुनना सुनाना, तथा उनके प्रबल प्रताप का चिन्तन, परात्पर त्रिगुणातीत भगवान के धामादिकों का मनवाणी से निरन्तर बिचार करना इत्यादि ।

यहीं से यह मनुष्य जीवन सार्थक है । अन्यथा कूकर-शूकर भी जन्म लेते हैं ॥८३॥

ब्रह्म सम्प्रदा राम पर, मुनि अगस्त्य परमान ।
भूले ते नहिं जानहीं, वकत आन की आन ॥८४॥

भावार्थः—आचार्य चरण पुनः अपनें अनुयायिओं को आदेश देते हैं कि इस बातको भूल न जाना चाहिए कि हमारा ब्रह्म सम्प्रदाय है । हमारे इष्टदेव परात्पर परब्रह्म श्री रामभद्र जी हैं । तथा सिद्धान्त द्वैत है अगस्त्य मुनि प्रतिपादित अगस्त्य संहिता इस सिद्धान्त में प्रमाण ग्रन्थ है ।

जो इस सिद्धान्त को नहीं जानते, वे भूले हुए हैं, इसी लिए असंवद्ध अनर्थक बातें करते हैं ॥८४॥

अरे शिकारी निर्दयी करिया नृपति किशोर ।
क्यों तरसावत दरश विनु रामसखे चितचोर ॥८५॥

भावार्थः—अरे निर्दय (दया रहित) शिकारी (आखेट में तत्पर) काले रंगवाले (श्याम सुन्दर) नृपबालक (श्री-दशरथ किशोर) चितचोर (मनोहर) क्यों अपनें दर्शनों के बिना मेरे मन को तरसा रहे हो ॥८५॥

उदित इन्द्र धनु श्यामघन, देखत सामन मास ।
रामरूप विरहिन लगत, रामसखे अति गाँस ॥८६॥

भावार्थः—श्रावण महीने में आकाश मे उदय हुए इन्द्र धनुष को देख, और श्याम रंग के बादलों को देखकर श्रीराम-लाल जी के सौन्दर्य उपासक विरही जनों के हृदय में नितान्त (अधिक) सन्ताप होता है ॥८६॥

शोच अर्थ रमु धातु को, अवतारी सियकन्त ।
उतपत कर्षण आदि लगि, क्रीडा राम अनन्त ॥८७॥

भावार्थः—रमुक्रीडायाम् का धान्वर्थ (धातुका अर्थ) विचारने से परिज्ञान होता है कि श्री सीतावल्लभ श्रीरामभद्र जी इस संसार के उत्पादक (पैदा करने वाले) पालक तथा संहारकादि अनन्त क्रीड़ाओं के करनें वाले हैं। इसी लिए अवतारी हैं (अन्य भगवत्त अवतारों के मुख्य कारण हैं)८७॥

इत वहराइच वह यवनपुर, उत गोरखपुर लषण ।
रामसखे निजभूमि यह भणत वेद लखि चषण ॥८८॥

भावार्थः—श्री अयोध्यापुरी[1] श्रीरघुनाथ जी की जन्मभूमि है इस लिए वेद पुराण सन्त महात्मा सभी इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करते हैं। इस पुरी का सीमा प्रान्त इस प्रकार है, वायव्य कोण में बहराइच, अग्निकोण में यवनपुर, ईशानकोण में गोरखपुर और पश्चिम दिशा में लषणपुर, इस प्रकार यह श्री अयोध्यापुरी श्री सरयू जी के तट पर सुशोभित होती है ॥ ८८ ।

इत सरयू उत गोमती, लखिमन भूमि अनूप।
चारों दल सजि नित रमत, रामसखे हरिभूप ॥८६॥

भावार्थ—श्री अयोध्यापुरी के उत्तर दिशा में श्री सरयूजी दक्षिण दिशा में श्री गोमती गंगा जो बहती हैं। इसी लिए इन दोनों गंगाओं की बीच की भूमि अत्यन्त पबित्र और सुन्दर रम्यस्थल विचार कर भगवान श्री रामभद्रजी राजाधिराज रूप में अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर निरन्तर रमण करते हैं ॥८६।

अवध जीव गोपुर धरे, वड़े सुज़न रघुवीर।
रामसखे सो जानहो, गति भुसुण्डि मतिधीर ॥६०॥

1--टिप्पणी—अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची त्ववन्तिका।
पुरीद्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदा शुभा ।८८॥

भावार्थ:—भगवान् श्रीरघुनाथ जी की बहुत लम्बी भुजाहैं इस लिए दयालु श्रीरामभद्र जी साकेत लोक को अपनी यात्रा में उन्हीं भुजा द्वारा सम्पूर्ण अवधवासियों को अपनें साथ ले गये हैं, इत्यादि बातें गति गँभीर मति धीर श्रीकाकभुसुण्डिजी को ज्ञात हैं। भाव यह है कि इन्ही काकभुसुण्डि जी के पीछे २ श्रीरघुनाथ जी की भुजा दीख पड़ी थी। यह बात रामायणादि ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं॥ ६०॥

जन्म ब्याह भृगुपति विजय, राज गमन गोधाम।
रामसखे ऐसे नहीं, चरित कहूँ अभिराम॥६१॥

भावार्थ:—ऐसी मनोहर, सुन्दर लीला अन्य भगवत अवतारों में नहीं पाई जाती है, जैसी कि रघुनाथ जी की लीलाओं में सुन्दरता पाई जाती है। भगवान् का जन्मोत्सव बहुत ही सुन्दर है। विवाहोत्सव-भूमि तनया पवित्र जन्मवाली श्रीजनकपुत्री श्रीसीताजी के साथ पाणिग्रहण बहुत ही सुन्दर है। धनुष यज्ञ में श्रीपरशुराम जी के क्रोध को श्रीरामभद्र जी नें अपने मीठे बचनों द्वारा कैसे शान्त किया कि परशुराम जी स्वतः परास्त हो गये।

इसी प्रकार भगवान की जितनी लीलायें हैं, सभी आनन्द को बढ़ाने वाली हैं। अन्त में अयोध्या वासिओं को अपने साथ साकेतलोक को लिये जाना कितना सुन्दर प्यार है॥६१॥

रामभजे तनु तरत हैं, होय कोउ जग जाति ।
रामसखे जाको सदा, जपत शम्भु दिनराति ॥६२॥

भावार्थः—संसार में किसी भी योनि या जाति में पैदा होकर, जो श्रीराम नाम का स्मरण करते हैं वे संसार बन्धनसे मुक्त होकर श्रीरामधाम साकेत लोक को पधारते हैं। इसीलिए श्री शंकर जी लोक कल्याणार्थ रात दिन इस पवित्र रामनाम का जाप करते हैं और लोगों को भी यही उपदेश देते हैं। यह बात पुराण संहितादिक ग्रन्थों में प्रसिद्ध है ।६२॥

चित्रकूट वन कुञ्ज में, विहरत दशरथ लाल ।
रामसखे प्रणबांधि के बसे सो होय निहाल ॥६३॥

भावार्थः—आचार्य चरण का आदेश है कि श्री चित्रकूट प्रमोदवन की कुञ्जों में सर्वदा श्रीदशरथ किशोर श्रीरामलाल जी विहार करते हैं। इसी लिए श्री चित्रकूट में जो नियम पूर्वक निवास करता है, वह पुरुष निहाल = प्रत्येक पदार्थों से परिपूर्ण हो जाता है। किसी पदार्थ की पुनः चाह नहीं रहती ॥६३॥

रासध्यान करिए सदा, सकल रसन गम्भीर ।
रामसखे प्रण कुटी कर, बस सरयू के तीर ।६४॥

इति श्रीमद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य्य विरचित प्रस्फुट संग्रीहीता दोहावली समाप्ता शुभम्भूयात् ।

भावार्थः—आचार्य का उपदेश है कि निरन्तर भगवान श्रीरामभद्र जी की रासलीला का ध्यान करना चाहिये। क्योंकि सभी रसों में यह रासलीला ध्यान सीमा रहित है। इसी लिए श्रीसरयू जी के किनारे प्रण कुटी बनाकर निवास करो ॥६४॥

१-टिप्पणी:—प्रणनियमादि, रूप कुटी को बनाकर श्रीसरयू जी के किनारे निवास करना चाहिए। रस पाँच हैं जैसे कि १ शान्त २ सख्य ३ वात्सल्य ४ दास्य और ५ वाँ शृङ्गार।

इस दोहावली ग्रन्थ के तात्पर्यान्वेषण से परिज्ञात होता है कि श्रीमद्रामरूखेन्द्र (मध्याचार्य जी के रचे हुए कुल दोहे ९४ चौरान्नवे हैं। इसका कारण यह है कि आगे के दोहे आचार्य की प्रशंसा रूप में पाये जाते हैं इस लिए ग्रन्थकार के पौत्र शिष्य श्रीस्वामी जानकी शरण जी महाराज के रचे हुए हैं यह बात आगे के दोहों से स्पष्ट प्रतीत होती है।

(टीकाकार)

—❀()❀[]❀—

श्रीस्वामी जानकी शरणजी महाराज

रचित दोहा—

१—मति अभेद खण्डन करन, मण्डनरूप स्वरूप ।
भये न अस जग होंयगे, रामसखे अनुरूप ।६५।।

भावार्थः—१-श्रीमद्रामसखेन्द्र निध्याचार्यजी सदृश भगवान् श्रीरामभद्रजी के साकार स्वरूप का मण्डन (प्रतिपादन) करते हुए अद्वैत (अभेद) सिद्धान्त का निरास (खण्डन) करने वाला इस संसार में न तो हुआ है, और न होने ही वाला है ।। ६५ ।।

२—रामसखे रसकेलि के, रूप लालची नयन ।
अवधविहारीलाल विनु, देखे लहैं न चयन ।।६६।।

भावार्थः—२-श्रीमद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य जी के दोनों नेत्र कमल, श्रीरामभद्रजो के आनन्द स्वरूप क्रीडा रस सम्बन्धी रूप माधुरी को देखनें के लिए नितान्त (अत्यधिक) लालची (चाह रखने वाले) हैं । इसीलिए अवधविहारी श्रीरामलाल जी के देखे विना आचार्य्य जी के नेत्रों को आनन्द नहीं मिलता है ।। ६६ ।।

३—राम उपासक रसिकजग, तीनकालहूँ मांहिं ।
वर विराग धारणकरन, रामसखे सम नांहिं ॥६७॥

भावार्थ:—- श्री स्वामी जानकी शरण जी महाराज का आदेश है कि श्रीमद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य सदृश श्रीरामोपासना निष्ठ रसिक महात्मा सुन्दर विराग को धारण करन वाला दूसरा इस संसार में तीन हूँ (भूत, वर्तमान, भविष्य,) काल में नहीं हुआ है ॥६७॥

४—सब साधनको सिद्धयह, पवन प्राण जगप्रान ।
नवत सकलबाधामिटत, जानकि जन हनुमान॥६८॥

भावार्थ:—- जो संसार के प्राणरूप पवनदेवहैं उनके प्राण सदृश पुत्र श्री हनुमान जी सब साधकों के सिद्धि रूपहैं । इनकी आराधना करनें से संसार की सभी बाधाएँ मिट जाती हैं । ये वायुनन्दन श्री हनुमान जी श्रीराघव जी के भक्तों की हर प्रकार से रक्षा करते हैं ॥६८॥

५—जानकि जीवन रामप्रिय, रामसखे चितचोर ।
प्रेम सिन्धुहृद कमल के, मधुकरयुगल किशोर ॥६९॥

भावार्थ:—- श्रीस्वामी जानकी शरण जी महाराज श्रीरामलाल जी से प्रार्थना करते हैं कि हे जानकी जीवन श्रीराम लाल जी प्रियतम हे श्रीमद्राम सखेन्द्र निध्याचार्यजी के चित्त-

को चुराने वाले प्रेमसागर आप दोनों युगल किशोर प्रिया प्रीतम सहित हमारे हृदय रूप कमल के मधुकर हो जांय, यह हमारी आप दोनों से प्राथना है ॥६६॥

६—जनक नगर में जायके, रूप ललित रघुलाल।
हरे सबनके मन नयन, जानकिशरण निहाल॥१००॥

भावार्थः—- श्रीरामलालजी जनक नगर (मिथिलापुरी) पधार कर अपनी सौन्दर्य माधुरी से सभी मिथिलापुर वासी स्त्री पुरुषोंके मन सहित नेत्रोंको अपनी ओर खींचकर स्वाधीन कर लिये इस कारण मैं (जानकी शरण) निहाल (परम आनन्द युक्त) हूँ ॥१००॥

७-श्रीगुरु रामसखेन्द्र के, चरण कमल को ध्यान।
करतमिटत भवताप सब, जानकिजन गुणखान।१०१।

भावार्थः—- श्री स्वामी जानकीशरण जी महाराज का आदेश है कि सम्पूर्ण गुणों का स्थान श्री गुरु रामसखेन्द्र निध्याचार्य्य जू के पाद पद्मों का ध्यान सभी सांसारिक तापों को मिटा देता है ॥१०१॥

८—बहुत पतित पावन किये, सुमति सुशीला नाम।
गुरु अनन्यता प्रगट किय, कियेजात अभिराम।१०२।

भावार्थः— सुन्दर बुद्धि वाले श्री सुशीला निधिजी महाराज इस संसारमें बहुत पतितों का उद्धार किये हैं और अपनी अनन्य गुरुभक्ति को लोगों के लिये प्रकट रूप में दिखाये हैं। इस लिये सांसारिक लोगों के लिये बहुत ही अभिराम (सुख) देने वाले महात्मा हुए हैं।❀

❀टिप्पणीः-श्रीस्वामी जानकी शरण जी के गुरुमहाराज का नाम श्रीस्वामी श्रीसुशीला निधि जी महाराज था। ये बड़े अनन्य गुरुभक्त तथा पतितपावन थे। यही श्रीसुशीला निधि जी महाराज जयपुर जाकर श्रीमद्रामसखेन्द्र निध्याचार्य्य जू की मूर्ति [प्रतिमा] का निर्माण कराकर स्थान मैहर में ले आये हैं।

गुरु परम्परा से सुनने में आता है कि जब ये जयपुर जाकर गुरु-मूर्तौं का निर्माण कराना चाहे तब चित्रकार ने कहा कि मैं किस आधार पर मूर्ति का निर्माण करूँ ? जब कि किसी चित्रादि की सहायता नहीं मिल रही है। चित्रकार की इसबात को सुनकर श्रीसुशीला निधि जीने कहा कि हम जिनकी मूर्तिका निर्माण कराना चाहते हैं, वे गुरुमहाराज आपको रातमें दर्शन देकर अपनी मूर्तिका निर्माण करालेगें। सुनने में ऐसा ही आता है कि रातमें श्रीमद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य जीने चित्रकार को दर्शन दिया उसी आधार पर चित्रकारने प्रतिमा का निर्माण किया। अनन्तर उस मूर्तिको स्थान मैहर में लाकर प्राण प्रतिष्ठा किये। उसी मूर्तीके साथ श्रीसुशीला निधि जी की भी छोटी सी मूर्ति है। यह भी

९–जानकि जन हनुमान सम, और देव नहिं कोय।
जनक नन्दनी रघुवरहिं, हितकर प्रकटे सोय ॥१०३॥

भावार्थः—श्रीस्वामी जानकी शरण जी महाराज का आदेश है कि श्रीमारुत नन्दन श्रीहनुमान जी के सदृश अन्य दूसरा देव सांसारिक लोगों का हित करने वाला नहीं हुआ है। महाबीर श्री हनुमान जी श्री जनकनन्दनी श्री सीताजी और श्री रघुनन्दन जी के सहायतार्थ संसार में प्रकट हुए हैं। श्री हनुमान जी साक्षात् शङ्करावतार हैं ॥१०३॥

१०–कौशल्या व्रत पुण्य ते दशरथ प्रेम प्रभाव।
कौशलपुर भाइन सहित प्रकट भयो रघुराव ॥१०४॥

भावार्थः—श्री कौशल्या अम्बा जी के पूर्व तपस्या द्वारा तथा चक्रवर्ती श्री दशरथ जी के प्रेमातिशय के कारण श्री अयोध्यापुरी में अपने अंशों सहित चारो भाई, संसार में दुष्ट राक्षसों का अन्त करके सन्त महात्माओं को सुखी करने के

बात सुनने में आती है कि श्रीसीताराम जी की बड़ीमूर्ति इन्होंने ही जयपुर से लाकर प्रतिष्ठित किया है. तथा मन्दिर की परिक्रमा भी इन्हीं की बनवाई हुई है। इनके द्वारा स्थान मैहर का बहुत बड़ा सुधार हुआ है। आप दीन दुःखियों पर दयालु तथा बड़े पुरुषार्थी महात्मा थे ॥१०२

लिए, तथा धर्म की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए अवतार लिये ॥१०४॥

सोरठाः—

११-बन्दो परम कृपाल श्रीमणि मूरति चित्रनिधि❀ ।
रामसखे सियलाल जिनयश प्रकटेउ जगतमधि।१०५

भावार्थः—श्री जानकी शरण जी महाराज अपने पितृव्य (काकागुरु) श्री चित्रनिधि जी महाराज की बन्दना तथा उनके सुन्दर यश की प्रशंसा करते हैं, कि सुन्दर शोभा युक्तमणि सदृश जिनके शरीर की कान्ति है, जिनका पवित्र-नाम चित्रनिधि जी है, इस असार संसार में प्रकट होकर जिन्होंने श्रीमद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य जी के इष्टदेव श्री सीता राम जी से यश का वर्णन किया है ॥१०५॥

❀टिप्पणी --श्री चित्रनिधि जो महाराजके विषय में गुरु परम्परा से सुनने में आता है कि इनका जन्म कायस्थ कुलका था और इनके दोनों हाथ टूटे थे । परन्तु जब ये श्री मद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य जी के निकट आकर अपने घर परिवार का ममता त्यागकर विरक्त शिष्य हो गये तब इनके लिए श्री महाराज जी की आज्ञा हुई कि तुम श्री रघुनाथ जी के कीर्ति सम्बन्धी ग्रन्थों को लिखा करो ।

श्री गुरु महाराज का यह आदेश शिरोधार्यकर सुन्दर अक्षरों में

१२–सरयू निकट अराम मधि कुन्जमहल तेहिनाम ।
जानकि जन तंह रासमय सियाराम को धाम ।१०६।

भावार्थः—श्री जानकी शरण जी महाराज रहस्य ग्रंथों का अवलोकन कर तथा उन ग्रन्थों का आशय स्वयं समजकर अपने अनुयायिओं के लिए आदेश कर रहे हैं कि श्री सरयू जी के निकट (पास) में आराम (सुन्दर पुष्पवाटिका) है। उसके मध्य भागमें एक मनोहर महल है जिसका नाम कुञ्ज-महल है यही स्थान श्री सीताराम जी का रासमय (आनन्द-मय) धाम है ।।१०६।।

१३–षटविकार को साधिकै, नाम कहै श्रीराम ।
ब्रह्म ग्लानि अनुराग सों, जाहि अवध निजधाम ।।१०७।।

भावार्थः—षट् विकार- १-काम २-क्रोध ३-लोभ ४-मोह ५-ईर्षा तथा द्वेष इन विकारों के वेग को रोक कर ब्रह्मग्लानि

ग्रन्थ का लिखना आरम्भ कर दिया। इनके हाथों की लिखी बहुत सी पुस्तकें स्थान मैहर में हैं । परन्तु पुस्तकों पर ये अपना हस्ताक्षरादिक नहीं किये इसलिए परिजात नहीं होता कि इनके हाथों की लिखी हुई कौनसी पुस्तकें हैं । इनकी निजवंश परम्परा भी नहीं मिलती केवल इन्हीं का नाम प्रसिद्ध है ।।

(क्या ? श्री राघव जो मुझे दर्शन नहीं देगें ?) सहित, अनुराग पूर्वक श्रीराम जी का नाम स्मरण करता है, वह मनुष्य श्री रघुनाथ जी के धाम (साकेत लोक) को चला जाता है। पुनः सांसारिक बन्धनों में नहीं पड़ता है ॥१०७॥

सोरठाः—

१४—चरण कमल शिरनाय सियको हियमें ध्यायके।
मन वाञ्छित फलपाय सुखी होंय नरनारि सब ॥१०८॥

भावार्थः—महारानी श्री सीता जी का हृदय में ध्यान धर कर श्री सीताराम जी के चरण कमलों में अपने मस्तक को नवाकर प्रणाम करने से सभी स्त्री पुरुष अपने मन वाञ्छित फलों को पाकर सुखी होते हैं ॥१०८॥

१२—राममन्त्र के सुनत ही भवसागर तरिजाय।
जानकि जन गुरु दयाते दूसर जन्म कहाय ॥१०९॥

भावार्थः—जो मनुष्य श्री गुरु महाराज द्वारा श्रीराम तारक मन्त्र को सुनता है वह मनुष्य इस संसार सागर से मुक्त हो जाता है—और संस्कारों से युक्त इस मनुष्य का वह दूसरा जन्म कहा जाता है। "पहिला जन्म,, मातृ उदर से उत्पन्न होने का नाम है ॥१०९॥

१६–शरण जानको चरणके शरण होत जगजौन ।
अघ तूरण चूरण करन परिपूरण सुखदौन ॥११०॥

भावार्थ:—जो मनुष्य जन्म लेकर भगवान श्री जानकी जीवन रघुनाथ जी के चरणारबिन्दों में अपना शरण (घर) बना लेता है, उस मनुष्य के शरण❀ (रक्षक) स्वयं भगवान हो जाते हैं। इसीलिए उस मनुष्य के सम्पूर्ण पाप शीघ्र चूर्ण होकर धूलि सदृश बनकर बिला जाते हैं। और वह मनुष्य पूर्ण सुखी हो जाता है ॥११०॥

"इन नीचे के तीन दोहों में तिलक की शोभा तथा तिलक निर्माण का विधान बताया गया है॥ यथा:—

९७–रुचिर रचित केशर तिलक सोहत भाल विशाल ।
रेख युगलजनु मदन शर मध्य विन्दु छवि जाल ॥१७॥

भावार्थ:—जिस प्रकार कामदेव के वाण की दो रेखा शोभित होती है उसी प्रकार सुन्दर विशाल मस्तक पर केशर मिश्रित मलयागिरि चन्दन की दो रेखाओं के मध्य भाग में सुन्दरगोलाकार विन्दु सहित विराज मान यह तिलक सुशोभित होता है ॥१११॥

टिप्पणी:—❀शरण रक्षक तथा स्थान का नाम है। यथा—
शरणं गृहरक्षित्रोः इति अमरकोषः ॥इति॥

१८-तिलक विन्दु युग भौंहमधि अति अद्भुत छविदेत।
मध्यराखि मणि उरगयुग, कमलकूल सुख लेत ॥११२॥

भावार्थ—जिस प्रकार दो सर्प बीच में मणि को धर कर मणिके प्रकाशमें जलके किनारे सुख पूर्वक विहार करते हैं। उसी प्रकार दोनों भौहों के मध्य भाग में दो रेखाओं के बीच में मणि सदृश गोलाकार विन्दु सहित मस्तक पर विराजमान यह सुन्दर तिलक अत्यद्भुत शोभा देने वाला है❀ ॥११२॥

---

*टिप्पणीः—दोनों भौहों के मध्यभाग से ऊपर केश पर्यन्त दो पतली रेखाओं (रेखा धान की मोटाई की बराबरी होनी चाहिए) को ले जानी चाहिए। रेखा सुन्दर गोली हो जिस प्रकार श्री भगवच्चरणार विन्द शोभित होते हैं।

इन दोनों रेखाओं के मध्यभाग में रेखाओं के स्पर्श से रहित सुन्दर गोली पूर्णिमा के चन्द्राकार पीत (पीली) विन्दु को पधरानी चाहिए। दोनों रेखा पीतरङ्ग की होनी चाहिए। इसलिए केशर मिश्रित हरिचन्दन [मलया गिरि चन्दन] अथवा हरिद्रा मिश्रित होना चाहिए। किन्तु इस बात का स्मरण होना अत्यन्त आवश्यक है कि यह चन्दन भगवत्प्रसाद होना चाहिए नहीं तो श्रीरामरज या श्री जानकीरज चन्दन

तिलक सौन्दर्य पर :—

११६--की दोउ के अवलीन अलि मध्य इन्द्र बधु सोह ।
की अनङ्ग के चाप मध्य, विद्रुम छवि संदोह ॥११३॥

इति श्री स्वामी जानकी शरण जी विरचित प्रस्फुट संग्रह
दोहावली-समाप्ता ॥

भावार्थः—क्या दो सखियों के बीच में कोई देव स्त्री आकर अवलीन (छिपी हुई) सुशोभित हो रही है । या काम देव के दो धनुष के मध्य में विद्रुम मणियों के सौन्दर्य का एक जगह समारोह (एकट्ठा) हुआ सुशोभित होता है ॥११३॥

❀ इतिशम् ❀

इति श्री मद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य एवञ्चैतत्पौत्र शिष्य श्रीस्वामि जानकी शरणयोर्विरचित दोहावल्यां विद्वद्वर श्रीस्वामि श्रीरामकुमार शरणषट्श्री महान्तपद विभूषित श्री स्वामीराम रंगीले शरणयोः कृपापात्र षट् श्री महान्त प्रमोदवन बिहारीशरणशास्त्रि निर्मिता भावार्थदीपिका नाम टीका समाप्त, ॥ इति ॥

को ही महात्मागण लगाया करते हैं । यहां भी तुल्य योगिता अलंकार है, उदाहरण पहिले दे दिया गया है ।

कमल जल का नाम है । जल बर्ग अमर कोष देखिए ।

श्री सीतारामयोः करकमलेषु समर्पिताऽस्तु ।

* शुभम्भूयात् *

—*—

दोहाः- देवधुनीतट निकट पर, तीरथराज प्रयाग ।
तहं श्रीदेव मुरारि जू, कीन्हो योग विराग ॥१॥

सोरठाः--श्री तुलसिदास महराज तिनके सुन्दर वंश में ।
श्री रघुनाथदासज़ि सम्प्रतिकाल महन्त हैं ॥२॥

दोहाः- यहि सुस्थल टीका लिखी सब सन्तन के पास ।
दारागञ्ज निवासकरि, दोहावली सुवास ॥३॥

मकरमास का असितपख दशमी मंगलवार ।
सम्वत् विक्रम विशशत, और रुद्र अवतार ॥४॥

—* श्रीरस्तु *—

* अथ जनन्यष्टकम् *

शिखरिणी छन्दः

तमश्छन्नो मातर्निखिल विषयैश्छादित मति—
स्त्वयाऽऽयत्तं सर्वं परमशिवदे मावतु च।
ममापीयं वाञ्छा तव सरसिजांघ्रौ मम मतिः
सदायुक्ता स्यान्मे नहि लघुषु कामादि रिपुषु ॥१॥
यदीत्थं पापं माम् त्यजसि शिवदे मोह विकलम्,
तदा मेत्रातारं कथय तव दृष्टौ क्च शिवम्
ममेदं पापौघं तव जननि दृष्टौ यदि वसेत्,
अहो मातर्मन्ये भवसरणि भोक्ता न भविता ॥२॥
दयायास्तेपारं परमविदुषां कोऽपि चतुरः,
समर्थो न स्याद् भो जनक तनये रामसुखदे।
महिम्नस्ते मातर्नच गणयितुं कोऽपि जगति,
समर्थो जातो मे क्चविषययुक्ता हि विमतिः ॥३॥
दयाकार्या मातर्मयि पिशुनकृत्ये रिपुवशे,
नचेन्मातः पापे परमदयनीये तव कृपा।
तदेत्थं जानीमस्तव सदय दृष्टेः कुसुनयः,
मयापीत्थं ज्ञातं जगति मम बन्धुर्नच सुहृत् ॥४॥

त्वया सर्वं ज्ञातं जननि मयि कांक्षा च विदिता,
भवत्याः पादाब्जे निवसतु सुचित्तं मम सदा।
न यामोऽन्यां मातर्नच शरणदाता मम दृशि,
ममाप्येनां लिप्सां शृणु जननि माञ्चावतु सदा ॥५॥
मयाऽपीत्थं ज्ञाता तव जननि भक्ते सुकरुणा,
तदा मे सञ्ज्ञाता भगवति सुतृष्णा मयि कृपा।
कदा सौभाग्यं मे तव मुखसरोजं सुविमलम्,
न तृप्तिं पास्यामो नतु विषयतृष्णा गलति मे ॥६॥
न चाकांक्षा राज्ये न च निखिल भोगादि विभवे;
मतिर्लग्ना स्यान्मे त्वयि शरणतृष्णा भवतु मे।
त्वमेवैतद् विश्वं सृजसि पालसि संहरसि, च
त्वदन्यत्को लोके जननि सुखशान्तिं वितनुते ॥७॥
कयाम्यम्ब त्यक्त्वा जनकरुण दृष्टेस्तव पदम्,
अनाथे नाथेऽस्मिन् यदि तव सुदृष्टिर्नभवति।
तदा मातर्जाने भवसरणि मोक्ता नहि शिवम,
तदित्थं स्यान्मातर्भव शरणदात्री जगति मे ॥८॥
मदीयं सुवाक्यं सदाज्ञेय योग्यम्।
पठन्नत्र लोके सुखं स्यान्न दुःखम्।
मदीयाऽपि वाञ्छा सदा पातु माता,
न लोके यमस्याऽपि चर्चा भवेत ॥
"भुजङ्ग प्रयात छंदः"

श्रीसद्मणि संप्रोक्तं पद्यं पुण्य विवर्धनम् ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या नास्ति तेषां पराभवम् ॥

॥ इति-शम् ॥

कार्तिक शुक्ल २ शनिवार सं० २०१० दिनांक २४—१०—५३

मुद्रक— विरक्त प्रिंटिंग प्रेस, श्री अयोध्या जी।